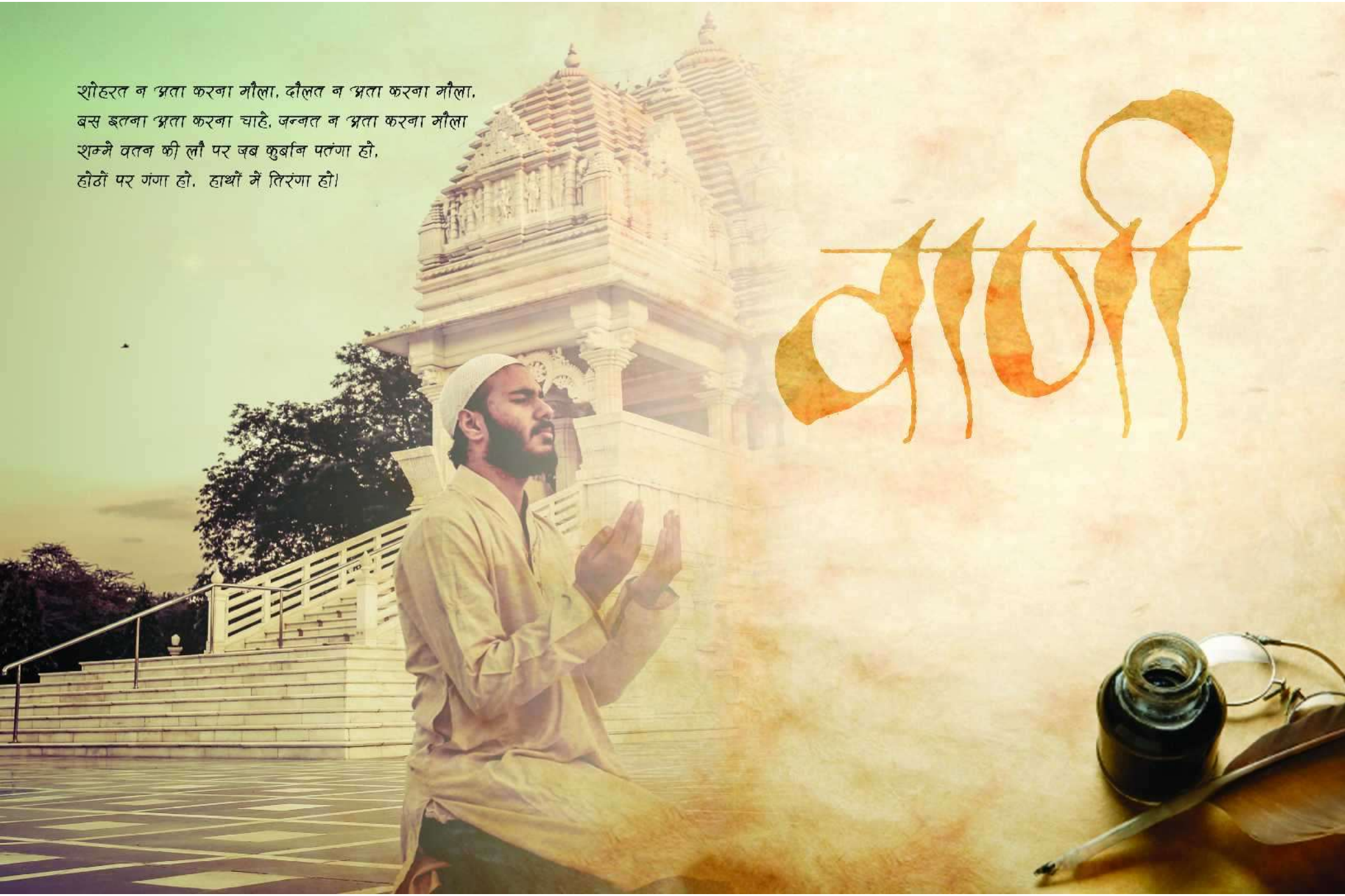

शोहरत न अता करना मौला, दौलत न अता करना मौला,
बस इतना अता करना चाहे, जन्नत न अता करना मौला
शम्मे वतन की लौ पर जब कुर्बान पतंगा हो,
होठों पर गंगा हो, हाथों में तिरंगा हो।
वाणी

अनुक्रमणिका

38 संपादकीय
39 प्रजा को खुश रखना है
42 स्थिरता जीवन की
43 रात्रिभोज
46 आहटें
47 योध
48 बेहद खूबसूरत हो
48 सपने
49 बेज़बान रिश्तों की डोर
51 सफर
52 कुछ यूँ भी
52 बंद दरवाजे
53 कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन
56 पिता का पत्र
59 नज़र
60 सरदार
63 कुलपति के मन की बात
66 वो कौन चल पड़ा
67 नेपथ्य के नायक
69 कैसे समझाऊ
70 रात
71 खटखटाहटें
73 इश्क के तीन मुकाम
74 क्या लिखूँ
77 हिन्दी और हम, राजभाषा
दशा दुर्दशा
80 ऐ बिट्स तेरे ख्याल में
81 भारतीय साहित्य की झलकियाँ
84 घटिया प्रेरक प्रसंग
85 क्या सोचा था और क्या है पाया
86 तिलक लगाना जरूरी है
87 मेरी यादें
91 रेलगाड़ी का सफर
92 क्यों मैं निर्जीव हूँ?
93 काँटों की यारी
93 गुमराह
94 एक पत्र की अनूठी यात्रा
96 गुजारिश
97 युग बदलेगा, हम बदलेंगे
99 स्वयंसिद्धा
99 बीते हुए लम्हे का पैगाम
100 प्रतिद्रोह
102 घर जा रहा हूँ
103 दामन से बात न की

संपादकीय

जन्म लेकर तेरी गोद में, जीवन जीना है मुझे इस भूलोक में,

आगे चलूँ या संग चलूँ, कैसे जिऊँ मैं इस लोक में?

सारी समस्याओं को भूलकर जब यह चंचल मन बिट्स की गलियों में उन्मुक्त घूमता है, तब पता चलता है कि इसके हमराह काफी व्यस्त हैं। मौसम चाहे जितना भी सुर्ख हो, लोग हर वक्त यहाँ गर्मजोशी से कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। कुछ न कुछ करते रहने वाले इस समाज का हिस्सा होते हुए इन सारी हलचलों को अभिव्यक्त करना एक अभूतपूर्व अनुभूति है।

जिस दिन इस पत्रिका के सम्पादन की जिम्मेदारी मिली थी, यह एहसास भी नहीं था कि इसका अंत कैसा होगा। समय के साथ-साथ इस ज़िम्मेदारी का महत्व समझा, तो पाया कि यह एक साल की बात नहीं है, मेरे ऊपर एक अत्यंत महत्वपूर्ण धरोहर को संभालने की उम्मीदें भी हैं। आशा करता हूँ कि इस संस्करण में चयनित लेख आपको पसंद आएँगे, और लेखक के शब्दों से आप खुद की भावनाओं को जोड़ पाएँगे। बस एक साल पहले की एक उम्मीद और संपादकीय समूह का अथक परिश्रम आज कुछ पन्नों में सिमट कर आपके सामने है। इन शब्दों को शब्द मात्र ही मत समझिएगा, ये शब्दों से बढ़कर कुछ जज्बातों के संकलन हैं, जिनकी अभिव्यक्ति आम बात-चीत में हो पाना शायद ही संभव हो। वाणी प्रतिनिधित्व करती है हर उस आम बिट्सियन का जो अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग इस संस्था के साथ जुड़कर, इसी का होकर बिताता है। वाणी प्रतिनिधित्व करती है उस ममता का जो दिल पर पत्थर रखकर अपने बच्चे को उससे दूर जाने की इजाज़त देती है। वाणी उन भावनाओं का इज़हार करती है जिनसे अवगत होते हुए भी हम अंजान रहते हैं। वाणी परिचय कराती है वक्त के तराजू पर अपने जिंदगी के सफर रुपी भार को संतुलित करते हुए युवा मन के संघर्षों से।

व्यक्तिगत रूप से एक पत्रिका के पाठकों को ही मैं उसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा मानता हूँ। कारण यह है कि एक पाठक ही उस पत्रिका की उम्र तय करता है। जब तक यह पत्रिका आप तक पहुँचेगी, संभवतः आप इम्तिहानों में व्यस्त होंगे। अगर यह पत्रिका आपकी इस जिंदगी के कुछ लम्हों में अपने रंग घोलने में कामयाब हो जाए, तो शायद उन तमाम कोशिशों को एक अंजाम मिल जाए

वाणी के सम्पादन सफर में एक बात महसूस की है, वह यह कि मंज़िल से ज़्यादा महत्वपूर्ण सफर होता है, अगर आप सफर में ईमानदारी से अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हैं, तो विश्वास मानिए, मंज़िल काफ़ी सुखद होती है। आशा करता हूँ कि आप वाणी में प्रकाशित लेखों को पढ़ने के सफर का आनंद उठाएँगे। अपने सुझावों को हमसे साझा करने के लिए vaani.bitspilani@gmail.com पर संपर्क करें। लिखते रहिए, जुड़े रहिए।

बस एक साल पहले की एक उम्मीद और संपादकीय टीम की मेहनत आज कुछ पन्नों में सिमट कर आपके सामने है।

प्रस्तुत है वाणी 2015।

-आवेश कुमार सिंह / सत्यम पराशर

प्रजा को खुश रखना है

आवेश कुमार सिंह

हर राजा की यह दिली ख्वाहिश रहती है कि उसके राज में सभी खुश रहें। लेकिन अगर कोई भूला- भटका राह का आदमी राजा को इस तथ्य से अवगत करा दे कि "हुजूर सपनों की दुनिया से बाहर आएँ। यहाँ सब कुछ उल्टा पुल्टा चल रहा है।" तो राजा को लगता है कि मानों उसके सारी सपनों की दुनियां धड़ाम से जमीन पर आ गिरी हो। राजा भोज के साथ भी कुछ ऐसा ही वाकया हुआ। राह चलते एक राहगीर ने उन्हें बता दिया कि महाराज आपके राज में आपकी प्रजा खुश नहीं हैं।

राजा भोज ने फौरन मीटिंग बुलाई। सब के सब भागे आए। टोपी संभालते हुए मंत्री भागा आया, तो अपनी तोंद संभालते हुए दरोगा भी भागा-भागा आया। अब मंत्री आया तो मंत्री के मुँहलगे अफसर को तो आना ही था। क्योंकि फाइलों में दर्ज मंत्र-तंत्र की काट तो केवल वही जानता है। वैसे तो सिपाही और बाबू भी आए थे लेकिन वो एक कोने में चुपचाप खड़े हो गए थे, नाम लेने पर पेशेतर जी हुजूर जरूर करेंगे। दोपहर की मीटिंग शाम को शुरू हुई।

"मैं यह क्या सुन रहा हूँ?" राजा भोज ने गंभीर तेवर के साथ शुरुआत की।

"सब झूठ है हुजूर! दुश्मन की यह सोची समझी रणनीति है" मंत्री ने बात को बेफिक्री से उड़ाते हुए बोला। हालांकि मंत्री को इस बात का तनिक भी इल्म नहीं था कि आखिरकार राजा किस वाकये की बात कर रहे हैं। लेकिन उसने इतना तो सोच कर ही रखा था कि किसी भी आरोप से शुरुआत से ही पल्ला झाड़ना ही बेहतर होगा।

"पता भी है कि मैं किस बारे में बात कर रहा हूँ?" राजा और नाराजगी से भरे तेवर दिखाते हुए बोले।

"मालिक जैसा आप बोले..." मंत्री ने सर झुकाते हुए भीगी बिल्ली की मानिंद जवाब दिया।

"वही तो... पहले पूरी बात तो सुन लो... मैंने सुना है कि मेरे राज में प्रजा खुश नहीं है।" राजा ने पूरी बात बतायी।

"अरे नहीं हुजूर, प्रजा तो बहुत खुश है।" मंत्री ने पूरे आत्मविश्वास के साथ जवाब दिया।

"तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ?" राजा ने तेवर और सख्त कर लिए थे। "मेरे विश्वस्त गुप्तचर ने मुझे यह बताया है" सार्वभौमिक सत्य की भांति राजा ने सिद्ध करते हुए कहा।

राजा बेचैनी से इधर उधर टहल रहे थे और मंत्री अपना सर झुकाकर चुप चाप बैठा हुआ था।

नहीं, नहीं, वह शर्मिंदा होने के कारण चुप नहीं था। वह तो सर झुकाकर इस चिंतन में मग्न था कि ऐसा कौन सा कमीना गुप्तचर हो गया है, जो सारी जानकारी मेरे सर के ऊपर से उड़ाते हुए सीधे राजा तक पहुँचाने की साज़िश और गुनाह-ए-अज़ीम कर रहा है। गुप्तचरों की तैनाती तो इस दरोगा के सुपुर्द है। मंत्री ने सर उठाकर दरोगा की तरफ अर्थपूर्ण दृष्टि से घूरा। दरोगा मंत्री की शिकायती नज़रों को पहचान गया और राजा से बोलने लगा "हुजूर अमूमन तो सभी खुश हैं मालिक, और जो खुश नहीं हैं वो वास्तव में कमीने लोग हैं। वे रियासत में असंतोष फैलाने के इरादे के साथ काम करते हैं। एक दो घटनाओं में तो उनके दुश्मन राज्य से मिले होने के पुख्ता सबूत भी हाथ लगे हैं और वह खुश न होने का ढोंग रचाते हैं।"

राजा दोनों को घूरता रहा।

दरोगा ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कही "मालिक एक बार आपका आदेश मिल जाए तो इन सभी कमीनों की बढ़िया ठुकाई कर दी जाए। थाने लाकर जब इनके तशरीफ़ खाने को गुलाबी रंग में रंग दिया जाएगा और उल्टा लटकाकर जब इनकी अच्छी तरह से दरयाफ्त कर दी जाए तो सारे आपके दरबार में शपथपत्र लाकर देंगे कि ये सब इत्ते खुश हैं कि खुशी से मरे जा रहे हैं।"

राजा ने दरोगा की ऐसी हिकारत भरी नज़रों से देखा कि दरोगा का अपनी दरोगागिरी से विश्वास ही डगमगाने लगा। हालांकि ऐसा सुझाव पहली बार नहीं आया था। राजा भोज अपने राज में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए आए दिन प्रजा की ठुकाई का आदेश देते रहते थे। देश में प्रजा के बीच अनुशासन बनाए रखने के लिए उसकी ठुकाई बहुत जरूरी है, राजा भोज का ऐसा विश्वास था। परन्तु आज तो दरोगा बड़े प्रश्न का उत्तर माँग रहा था। सब को लटकाना शुरू किए तो आसमान छोटा और रस्सियाँ कम पड़ जाएँगी। इसलिए इस दुविधा से बचने के लिए प्रजा को खुश करना ही होगा। इसके लिए कुछ और ही चक्कर चलाना होगा। यह चक्कर दरोगा के बस की बात नहीं है।

राजा ने मंत्री की तरफ देखा। इससे कुछ उम्मीद की जा सकती है।

"कुछ नई योजनाएँ सुझाइए ना, प्रजा का खुश रहना जरूरी है।" राजा ने कहा।

मंत्री ने अफ़सर की तरफ देखा।

अफ़सर के जेब और दिमाग में ऐसी अनगिनत योजनाओं की लंबी फ़ेहरिस्त तैयार रहती है। ठेकेदार और दलाल आए दिन उसे कुछ न कुछ बताते ही रहते हैं। वह गिद्ध की तरह ऐसे अवसरों की प्रतीक्षा में रहता था। उसने चुपके से फ़ेहरिस्त मंत्री को थमाई लेकिन इस प्रकार कि राजा भी देख ले कि असली काम कौन करता है।

"हुजूर, यदि हम सड़कों को चौड़ा कर दें तो प्रजा खुश हो जाएगी।" मंत्री ने कहा।

राजा बुदबुदाया, "ये मूर्ख प्रजा रास्ते चौड़े करने पर कैसे खुश हो जाती है, यह बात आज तक मुझे समझ नहीं आई।"

"हुजूर इतिहास की पोथियों में आज वही राजा अमर हैं जिसके राज में रास्ते चौड़े होते थे..." अफसर ने बड़े अदब से जवाब दिया। उसे पता था कि हर राजा इतिहास में दर्ज होना चाहता था। "पर रास्ते चौड़े होने से खुशी का क्या सम्बन्ध है?"

"हुजूर ज्यादातर हमारी प्रजा तो रास्ते पर ही रहती है, शायद इसीलिए..." अफ़सर बोला।

"हुजूर प्रजा हमेशा भागती रहती है इसलिए उसे भागने के लिए चौड़े रास्ते चाहिए"

मंत्री ने अपना ज्ञान बघारा।

"लेकिन प्रजा भागती क्यों रहती हैं?" राजा ने बिल्कुल ही मासूम बच्चों की भांति यह सवाल किया।

"प्रजा तो भागेगी ही महाराज। भागना ही तो उसकी नियति है। बीसों चीजों से उसे भागकर निकलना पड़ता है"। बिल्कुल ही दार्शनिक अंदाज में मंत्री बोला।

सब को बोलते हुए देखकर दरोगा से भी न रहा गया, वह तपाक से बोला, "हुजूर आए दिन हम लाठीचार्ज करते हैं और उस समय प्रजा को भागने के चौड़े रास्तों की आवश्यकता पड़ती है ताकि उन्हें एक दो डंडे कम पड़ें।"

"लगता है प्रजा को भागने का शौक है, क्यों?" राजा अपनी तरफ से चीजों को समझते हुए बोला।

"यही समझ लें हुजूर, वैसे भी जब हम रास्ते चौड़े करेंगे तो किनारे झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाली प्रजा को चौड़ी सड़कों पर भागने में सहूलियत रहेगी" अफसर चौड़े रास्तों का एक और फायदा गिनाते हुए बोला।

"हद है यार यह प्रजा भी कैसी कैसी बातों पर खुश हो जाती है..."

"मालिक अगर इन चौड़े रास्तों के किनारे पेड़ लगवा दें तो समझिए कि प्रजा खुशी से पगला जाएगी।" और आपकी जय जयकार करने लगेगी।" मंत्री मुस्कराते हुए बोला।

दरोगा ने भी खींसें निपोरीं, "हुजूर चौड़े रास्तों पर नाचने में भी आसानी होगी।"

"मालिक अगर पेड़ फलदार हों तो और भी बेहतर होगा", अधिकारी ने विद्वानों के अंदाज में अपनी बात रखते हुए बोला।

"तो फलदार लगवाइये न... बड़े फल के पेड़ होंगे तो और भी बेहतर होगा। लोग दूर से ही देखकर जय जयकार करने लगेंगे" राजा को यह विचार वाकई पसंद आया था।

"नारियल का लगवा दें मालिक" दरोगा ने अपनी दरोगा वाली बुद्धि लगाई।

"अरे नहीं भाई अगर नारियल का फल किसी के सर पर गिर गया तो?" राजा के अचानक प्रजा के प्रति उपजे प्रेम से सभी चौंके।

"वही तो मालिक! प्रजा सड़क पर चौकन्नी होकर चलेगी, यातायात प्रबंधन में मदद मिलेगी। चौड़ी सड़क पाकर प्रजा ज्यादा मस्ती में आ जाएगी, उस पर लगाम लगाना जरूरी है" दरोगा अपनी बात समझाते हुए बोला।

"महाराज रास्तों पर कुछ कुछ दूरी पर कुआँ खुदवा दीजिए। इससे प्रजा और ज्यादा खुश हो जाएगी" अधिकारी ने एक और विचार सुझाया।

"क्यों प्रजा डूबने में भी रुचि रखती है क्या?" राजा के चेहरे पर एक कुटिल मुस्कान तैर गई।

"कुआँ क्यों, हैंडपंप क्यों नहीं?"

"हैंडपंप सूख जाते हैं महाराज" अधिकारी ने समझाया।

' अरे उससे क्या हुआ सूखे हुए हैंडपंप से प्रजा को शासन से एक आस तो रहती हैं न कि किसी न किसी दिन इसमें पानी आएगा।' राजा ने अपने सिद्धांतों को समझाते हुए बोला।

मौका देखते ही मंत्री ने अपने फायदे कि बात रखने लगा, "महाराज फिर तो रास्ते में कुछेक जगहों पर सराय भी बनवा दी जाए।"

मंत्री की इसी बुद्धिमता के कारण अफसर आज भी उसे अपना गुरु मानता है। हवा में भी अपने फायदे की बात खोजने की कला में मंत्री माहिर था।

"राह चलते अगर महाराज का दिल किसी पर आ जाए तो काफी सहूलियत होगी" अफसर ने राजा की कमजोर नस पकड़ ली थी।

राजा ने भी झट से सहमति दिखाते हुए बोल दिया "बढ़िया सराय भी बनवा दो, अगर प्रजा इन सारे उपायों से खुश रहती है तो भला मुझे कैसे ऐतराज़ हो सकता है। आखिरकार प्रजा की खुशी में ही एक राजा की खुशी समाहित रहती है।"

स्थिरता जीवन की

-राजेश कुमार विजयवर्गीय

रूठा पादप आज पुकारे, ये जड़ता क्यों नसीब मुझे
हँसता भंवरा, हँसते खग सारे, माफ करूँ ना आज तुझे।
धूलि में मेरे पाँव छुपाकर, ये पक्षपात क्या तुझे लुभाया,
स्वछंद बना औरों को मुझे, स्थिर गज भर है थमाया।
उड़ता खग ऊँचाई जाने, भंवरा जाने गीत,
मैं तो वायु-मिट्टी वाला, बस माली से परिचित।
सुन आक्रोश लीलाधर बोले -ना कोई पीड़ा ना संताप,
वरदान नहीं पर नहीं शाप भी, अब ना करो तुम पश्चाताप।
माना खग ऊँचाई मापे, पर तुम तो जानो गहराई,
बीज से बन गए पादप भला, इसमें कहाँ जड़ता समाई।

स्थिरता यह जड़ता ना समझो, वरदान तुम्हें यह मेरा है,
माया में भटकने वालों से, यह तुम्हें सुरक्षा फेरा है।
माया की भूलभुलैया में, अपना जीवन वो पालेगा,
उड़ता खग भी अंत समय, मिट्टी में डेरा डालेगा।
पाँव तेरे पकड़े मैंने,पकड़ूँ कसकर जैसे तू बढ़े,
सिंचित हो प्रिति-जल से सदा, पकड़े मुझे तू आगे बढ़े।
तुझे सींचने वाला प्रेमी, बड़भाग लिखाकर आएगा,
एक लोटेभर जल से वो, बड़ा ही पुण्य कमायेगा।
स्वाभिमान तू रख ऊँचा, मैंने तुझे जड़ से पकड़ा है,
आलोक दिया भीतर तुझको, जा घूम बड़ा ये रस्ता है।

रात्रिभोज

यशादित्य व्यास

"ओए ANC चल रहा है?" रजत ने दरवाज़ा खटखटाते हुए पूछा।

"भूख नहीं है यार।"

"अबे चल ले यार! वैसे भी बंद होने वाला है. बैठूँगा नहीं वहाँ, कुछ पैक्ड ले कर आ जाएँगे।"

"चल तो फिर" ताला लगते हुए मैं बोला।

हम दस मिनट में वापस आ गए और अपने अपने कमरों की ओर चले गए। मुझे नींद नहीं आ रही थी तो मैं एक मूवी देखने लगा।

करीब एक घंटे बाद रजत फिर से आया।

"ओए गेट खोल"

"क्या हुआ?" मैंने कुंडी खोलते हुए पूछा।

"अरे यार मेरा ID Card नहीं मिल रहा। एक बार ANC तक चल रहा है क्या देखने?"

"चल"

व्यास से ANC तक की अपनी दूसरी यात्रा में मैं जासूस ही बन गया।

"कहीं ANC के काउंटर पर तो नहीं भूल गया? ANC से बाहर निकलते वक्त तेरे पास ही था क्या? तुझे आखिरी वक्त कौन सा याद है जब वो तेरे पास ही था?"

रजत भी पूरी निष्ठा से जवाब दे रहा था, "पता नहीं यार! ANC से निकलते हुए तो पक्का हाथ में ही था। फिर शायद मैंने जेब में भी डाल लिया था।"

शंकर रेहड़ी के बाद वो सीधे सड़क पर जाने लगा।

"ओए रजत! हम शायद इधर से आए थे न?" मैंने शौचालय के पीछे वाले छोटे से अँधियारे रास्ते की ओर इशारा

करते हुए बोला।

फिर जब मैंने फोन की फ्लैशलाइट जलाकर देखा तो एक चमकदार सी चीज़ रास्ते में पड़ी हुई मिली।

"मिल गया" मैं चिल्लाया।

"वाह यार! तू नहीं होता तो शायद उधर देखता भी नहीं. थैंक्स बे।"

"थैंक्स लाइट ANC रेहड़ी पर कुछ खिला दे। इतनी मेहनत के बाद भूख लगने लगी है।"

जब वहाँ पहुंचे तो रेहड़ी वाला जा चुका था।

"अरे! आजकल तो वो तीन बजे तक रुकता है। अभी तो मुश्किल से सवा दो हुए होंगे।" रजत ने आश्चर्य जताते हुए कहा।

"चल कोई नहीं। कल गुलाब जी के यहाँ खिला देना।"

वापस जाते हुए मैंने आदतन मेस की खिड़की में देखा। मैं ऐसा हर बार करता था, कौतूहलवश शायद कि क्या पता किसी दिन कोई दिख जाये। और मेरे आश्चर्य, डर और कौतूहल ने उस वक्त सारी सीमाएं पार कर दीं जब मुझे सच में मेस के अंदर टेबल पर एक आदमीनुमा चीज़ बैठ कर खाना खाती दिखी। वह पता नहीं क्या था। कद काठी और शरीर तो मनुष्यों जैसा ही था पर उसकी त्वचा दमकती हुई हरी-सी थी जैसे कोई हरा बल्ब हो। उसने मेस कर्मचारियों वाले कपड़े पहने हुए थे पर उसकी शक्ल नहीं दिख रही थी क्योंकि उसने पीठ खिडकी की ओर कर रखी थी और शुक्र है भगवान का कि नहीं दिख रही थी। देखनी भी नहीं थी। पर शायद प्रभु उस दिन कुछ खास मेहरबान नहीं थे। जैसे ही मैं आखिरी खिड़की पार करके निकलने वाला था, उसने अचानक मुझे मुड़ कर देख लिया। अब तो भागने के अलावा कोई चारा नहीं था। रजत, जो उसे देख ही खिड़की के नीचे झुककर चल रहा था, मुझे भागता देख समझ गया कि 'उसने' देख लिया। वो भी मेरे पीछे दौड़ने लगा। जब हम मेस के गेट के सामने पहुँचे तो गेट के पीछे से चिटकनी खुलने की आवाज़ आ रही थी।

"जल्दी दौड़!" रजत ने मुझसे कहा। डर के मारे उसका चेहरा सफ़ेद हो गया और मेरा चेहरा संभवत: उससे भी ज़्यादा सफ़ेद था। जब हम कोने वाले कमरे (न. 101) के सामने पहुँचे तो पाया कि हरीशंकर(मेस के अंदर वाली आकृति)

मेस के बाहर आ गया था| फिर हम दोनों ने अपनी ज़िंदगी की सबसे तेज़ स्प्रिंट लगाई और तब तक पीछे नहीं मुड़े जब तक भवन के अंदर नहीं घुस गए| भवन में प्रवेश करते ही हम दोनों मेरे रूम में घुस गए और लाइट बंद कर के दरवाज़ा बंद कर लिया|

"एक बात बताऊँ? शायद उसने हमें इस कमरे में घुसते हुए देख लिया|" रजत ने हाँफते हुए कहा. "उस कोने वाले गेट से... वो मुझे घूर रहा था|"

इससे पहले कि मैं कुछ बोलता, मेरा कमरा रोशनदान, खिड़की के काँच और दरवाजे के नीचे से आते हरे प्रकाश से नहा गया| वह कमरे के बाहर ही खड़ा था|

खट-खट. दरवाजे पर आवाज़ आती है|

हम दोनों अपनी-अपनी जगहों पर साँसे थाम कर जम से गए थे|

कुछ देर बाद वह हरी रोशनी चली गयी... जाते हुए कदमों की आवाज़ के साथ|

हम लगभग बीस मिनट तक जड़वत बैठे रहे| फिर जब एहसास हुआ कि शायद वो सही में चला गया है, मैंने हिम्मत करके दरवाजा खोला|

सन्नाटा| दूर-दूर तक कोई नहीं था|

तभी मेरी नज़र ज़मीन पर पड़ी मेस प्लेट पर पड़ी| दो प्लेटें थीं, वैसे ही जैसे बीमार छात्रों के लिए आती हैं|

मैंने ऊपर वाली प्लेट हटा कर देखा|

पनीर फ्रैंकी और भेल- वही जो मैं ANC रेहड़ी से लेने वाला था|

आहटें

रोहित कुमार

आहटें ये कैसी किसी के आने की,
मेरी तनहाइयों में कुछ यूँ घुल जाने की,
खबर व्यर्थ तो नहीं की वो पास ही है,
मेरी खामोशियों की आवाज़ सी बन जाने की,
आहटें ये कैसी किसी के आने की।
आदतें ये कैसी इन तड़पते शब्दों की,
खुद कहना भी और छुपना भी,
हर बार बहकते ख्यालों का,
एक ही ओर मुड़ जाना भी,
इस ठंड में लम्हों के कुछ यूँ पिघल जाने की,
आहटें ये कैसी किसी के आने की,
बारिशें ये कैसी कि खुद ही भीग जाऊँ,
और गिरती बूंदों से कुछ तस्वीर बनाऊँ,
पर हर तस्वीर एक सी ही जाने किसमें बदलती,
कोई कुछ भी बोले मुझे तुझ सी ही लगती,
बातें हैं फिज़ाओं में तुझ से मिल जाने की,
आहटें ये शायद हैं तेरे ही आने की।

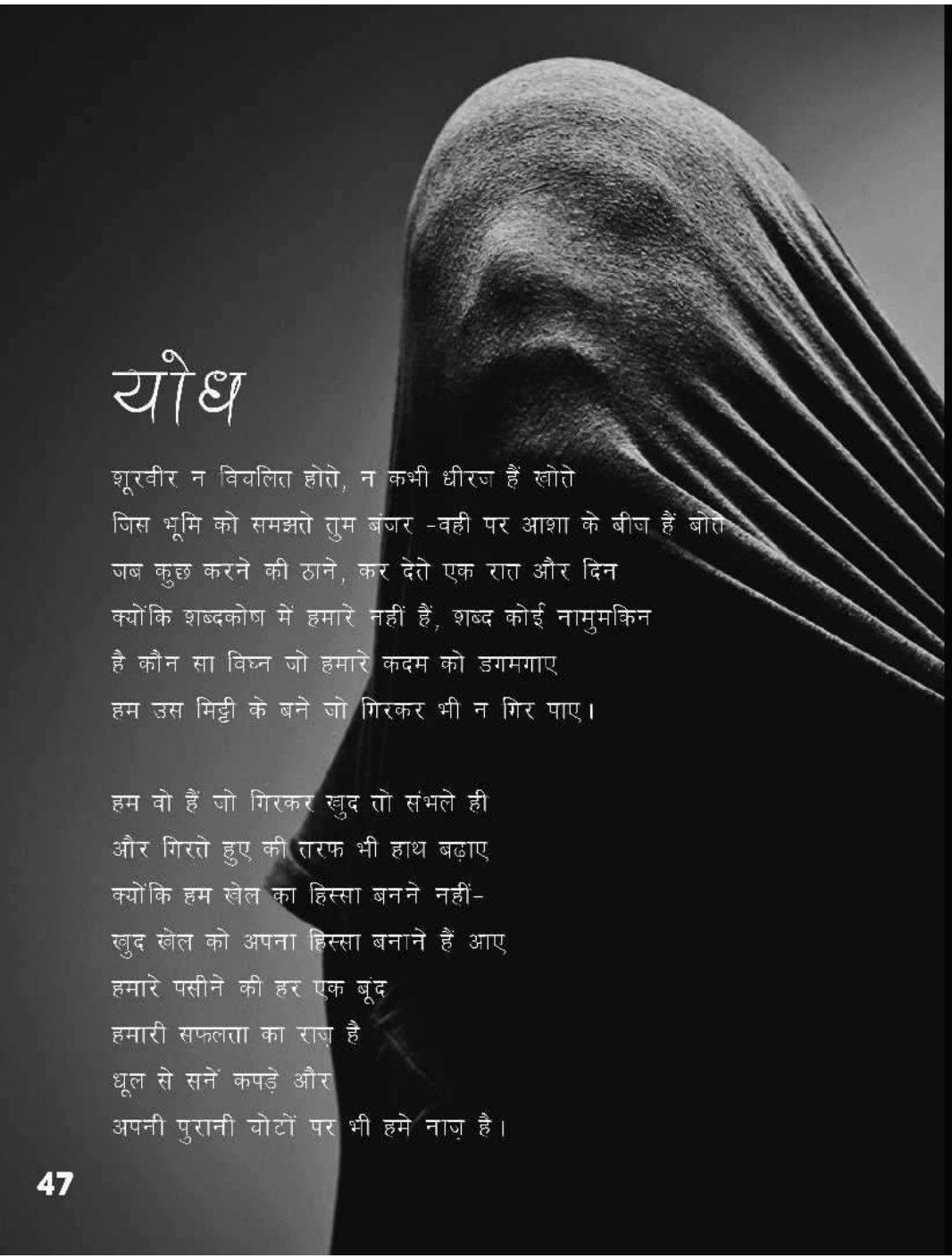

योध

शूरवीर न विचलित होते, न कभी धीरज हैं खोते
जिस भूमि को समझते तुम बंजर -वही पर आशा के बीज हैं बोते
जब कुछ करने की ठाने, कर देते एक रात और दिन
क्योंकि शब्दकोष में हमारे नहीं हैं, शब्द कोई नामुमकिन
है कौन सा विघ्न जो हमारे कदम को डगमगाए
हम उस मिट्टी के बने जो गिरकर भी न गिर पाए।

हम वो हैं जो गिरकर खुद ही संभले ही
और गिरते हुए की तरफ भी हाथ बढ़ाए
क्योंकि हम खेल का हिस्सा बनने नहीं-
खुद खेल को अपना हिस्सा बनाने हैं आए
हमारे पसीने की हर एक बूंद
हमारी सफलता का राज़ है
धूल से सनें कपड़े और
अपनी पुरानी बोटों पर भी हमे नाज़ है।

बेहद खूबसूरत हो

अर्चित अग्रवाल

घने कोहरे में छिपकर वो फिर,
उसे फूल चुगते देख रहा है,
रात पर पहरा लगाने आ चुका है चाँद,
और शाम के बादलों पर डामर पोत रहा है कोई।
बच्चे अपनी घुटने और ठोड़ियाँ पोंछकर,
चल पड़े हैं घर की ओर,
अपनी उधड़ी कमीजें छिपाते हुए
उसी तरह, जिस तरह छिपा रहा है वो
खुद से अपने मन को।
ठण्ड से उसके पैरों पर चकत्ते से हैं,
फड़क रहा है दाहिना हाथ,
पर वो भूल गया है अपनी सब व्यथा,
और रोक रहा है खुद को।
वो भी फूल तोड़ना चाहता है,
उनपर फिसलकर सीधी करना चाहता है,
माथे पर पड़ी सिलवटें,
जो शायद पिछली बारिशों में पड़ी थीं,
या पतंगबाजी के दौरान, याद नहीं।
नाक भौं मत चढ़ाना
तुम्हें भी पसंद तो होगी तारीफ अपनी
ऐ प्रिये! तुम ने सब रंग हैं इन फूलों के,
और तुम बेहद खूबसूरत हो।।

सपनें

विनायक केसरवानी

झुकी पलकों की छाँव तले,
छुपा रखे हैं सपने कई।
बंदिशों से घिरे,
देखे दबे पाँव जो।

सपने हैं...
खुद की पैदाइश की रात हुए मातम को,
उल्लास की महफ़िल बनाने की कभी।

माँ के हाथों थमाई अधभरी खाने की थाली को,
पेटभर खाने की थाल बनाने की।

नाखूनों में फसी बर्तनों की खुरचन को,
स्लेटों पे भागती चॉक की सफेदी से बदलने की।

सोलहवीं होली की साँझ को दिए मंगलसूत्र केबनिस्बत,
तरक्की का पहचान-पत्र गले में बाँधने की।

भींची पलकों के बीच सपने छुपाए हैं कई ,
महत्वकांक्षी, चंचल, परवर्तनशील सभी।

दबा एक खौफ है दिल के कोने में,
समय से पहले आँखों में कोई देख न ले झलक इनकी,
स्वच्छंद ख्यालों से डर, बुझा ना दे रौशनी इनकी,
ना बंद कर दे इन झुकी पलकों को हमेशा के लिए कोई॥

बेजबान रिश्ते की डोर

वरुण त्रिपाठी

पौष की कड़कड़ाती ठंड और उस पर भी प्रात: काल का समय| ऐसा लगता था कि चारों ओर दूर-दूर तक कुहरे और ओस की मूसलाधार वर्षा हो रही हो| चिड़ियों की चहल - पहल शुरू हो गई थी परंतु फिर भी ऐसा जान पड़ता था कि सूर्य देवता अब भी अपनी अरुणिमा फैलाने में सकुचा रहे हों| ऐसे में मैं तोतों के एक झुंड को देखने और चिड़ियों की चहचहाहट सुनने की लालसा में चुपचाप बिस्तर छोड़कर बाहर निकल आया|

यह मेरे बाल्य काल की बात है| शीत अवकाश में मैं अपने गाँव गया हुआ था| सुबह के ऐसे मनोरम दृश्य देखने के लिए मैं विचलित हो उठता था| प्रात: कालीन आँखें स्वयं ही खुल जाती थीं और चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर मैं अपने आप को रोक नहीं पाता था| यह मेरा रोज़ का कार्य बन गया था| मुझे इस प्रक्रिया में बड़ों की डाँट भी सुननी पड़ती थी, जैसे कि "मानते नहीं हो, सर्दी लग जाएगी तब पता लगेगा", परंतु बाल मन कहाँ मानने वाला था| लोटे में पानी लेकर मैं बाहर निकल ही पड़ता था जिससे कि यदि कोई बाहर जाते देख ले तो बहाना बनाने का साधन तो रहे|

तोतों से मुझे विशेष लगाव था| शायद इसलिए कि मैंने बड़ों से सुन रखा था कि तोते सिखाने पर मानव की भाषा बोल लेते हैं, विशेषकर पर्वतीय तोते| अत: मैंने अपने मन में मानव वाणी बोलने वाले तोते को पालने की कल्पना कर ली थी

मेरे घर के बाहर मैदान में बर (जिससे की तेल निकला जाता) और सरसों के पुआल के ढेर लगे हुए थे, इन्हीं की बालियों को खाने के लिए बहुत अधिक संख्या में तोते वहाँ पर एकत्र हो जाते थे| मेरा तोता प्रेम पागलपन की सीमा लांघ चुका था| एक दिन मेरे चाचा ने मेरी व्याकुलता का आनंद लूटने के लिए घर के बाहर ईंटों का एक आयताकार कक्ष बना दिया और मेरे बाहर आने पर मुझसे आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि "अरे! तुम अभी तक कहाँ थे, अभी मैंने एक पहाड़ी तोता पकड़ा था|" मैंने पूछा "कहाँ", उन्होंने ईंटों का एक कक्ष दिखाते हुए कहा कि, "अब क्या, वह तो उड़ गया| इन्हीं ईंटों में मैंने उसे

पकड़ा था, उसकी पूँछ बहुत लंबी थी|" इतना सुनते ही मैं फूट - फूट कर रोने लगा और कहने लगा कि, "चाचा, आपने उसे क्यों उड़ जाने दिया?" मेरा मन किसी भी प्रकार शांत नहीं हो रहा था, तब मेरी बूढ़ी दादी ने मुझे समझाया कि, "अरे पगले! तोते को इस तरह पकड़ना कोई आसान बात है क्या? और फिर इन मैदानी भागों में पहाड़ी तोता कहाँ से आ जाएगा?"

छुट्टियाँ समाप्त हो जाने पर मैं पढ़ाई करने के लिए लखनऊ वापस आ गया| यहाँ आने पर मेरी माँ ने मुझे एक ऐसा तोता दिला दिया जो पहले से ही किसी के यहाँ कुछ दिन पल चुका था| इस तोते की विशेषता यह थी कि पिंजड़ा खोल देने पर भी वह उड़ता नहीं था, केवल बाहर निकल कर पूरे घर में घूमना आरंभ कर देता था| फिर भी मुर्गे की तरह कुछ ऊँचाई तक वह उड़ ही लेता था|

मेरे घर के बरामदे में एक तख्त पड़ा हुआ था| मेरी माँ उसी पर बैठकर सब्जी काटा करती थीं | यदि शुकराज (प्यार से मैंने उसका नाम रखा था) पिंजड़े से बाहर होता तो शीघ्र ही मानव-शिशु की भाँति ठुमक-ठुमक कर चलता हुआ तख्त के पास आ जाता और तख्त से नीचे लटकती हुई चादर को चोंच से पकड़ कर ऊपर चढ़ जाता और आलू खाना आरंभ कर देता| आलू उसका प्रिय भोजन था| उदर - पूर्ति कर लेने के बाद वह कभी माँ की अंगुलियाँ पर, तो कभी सर तक पहुँच जाता था| कभी- कभी तो वह माँ की गोद में जा कर आराम से बैठ जाता था| शायद वह मेरी माँ को अपनी माँ ही समझता था| जब वह रसोईघर में जाती तो वह भी उनके पीछे बालक की भाँति पहुँच जाता था| अपने को वह बिल्कुल घर के सदस्य की ही तरह समझता था| साथ -साथ एक ही थाली में खाता था, अलग कटोरी में देने पर खाता ही न था|

मानव बोली सिखाने के अनेक प्रयास करने के बावजूद भी मुझे इसमें तनिक भी सफलता नहीं मिली| शायद प्रेम की भाषा समझने के बाद उसे कुछ और सीखने की आवश्यकता ही न प्रतीत हुई| उसके गले पर तो अब लाल धारियाँ भी पड़ गई थीं, परंतु उसके मुख से एक भी मानव शब्द न फूटा| मेरे मन की व्याकुलता बढ़ती गई, अत: मैंने उसे लाल मिर्च खिलाने का प्रयास किया लेकिन उसने उसे छुआ तक नहीं|

मस्ती में इधर-उधर घूमने वाला शुकराज अचानक एक दिन सवेरे से सुस्त-सुस्त था| ग्रीष्म ऋतु का सूरज आकाश में ऊपर चढ़ता गया लेकिन उसने न कुछ खाया न पिया| पिंजड़े के बाहर एक तरफ बिना कोई हलचल किए हुए वह पड़ा हुआ था| पास में ही मैं और मेरी माँ जमीन पर बैठे हुए थे और चकित थे कि शुकराज को अचानक हो क्या गया? हम ईश्वर से उसके ठीक हो जाने की विनती कर रहे थे कि एकाएक वह उछला और माँ की गोद में गिर पड़ा| शायद यमराज को आता देखकर वह भयभीत हो गया था| उसके प्राण-पखेरू मेरे हृदय को बेधते हुए अनंत गगन में उड़ गए| माँ की आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं और मैं जड़वत उसके मृत पड़े ठंडे शरीर को देखता रह गया|

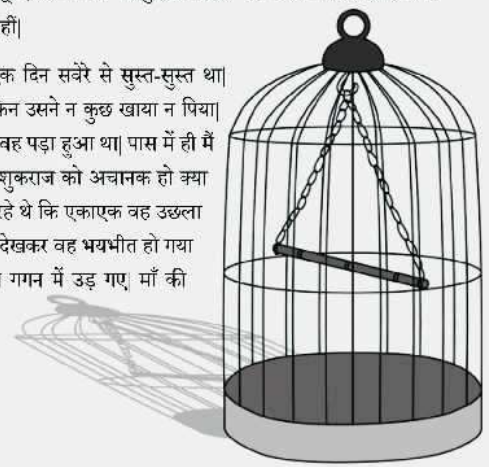

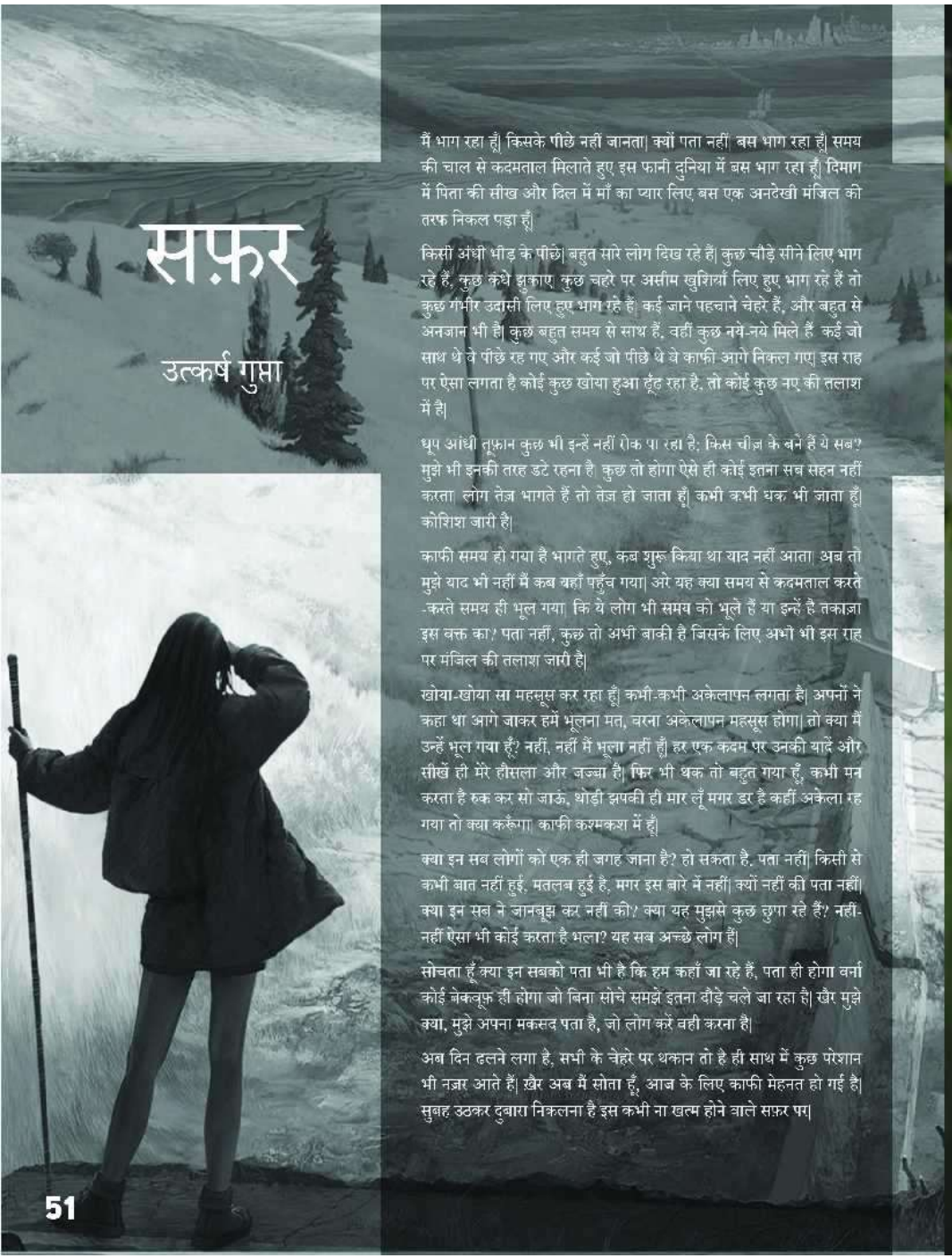

सफ़र

उत्कर्ष गुप्ता

मैं भाग रहा हूँ| किसके पीछे नहीं जानता| क्यों पता नहीं| बस भाग रहा हूँ| समय की चाल से कदमताल मिलाते हुए इस फानी दुनिया में बस भाग रहा हूँ| दिमाग में पिता की सीख और दिल में माँ का प्यार लिए बस एक अनदेखी मंजिल की तरफ निकल पड़ा हूँ|

किसी अंधी भीड़ के पीछे| बहुत सारे लोग दिख रहे हैं| कुछ चौड़े सीने लिए भाग रहे हैं, कुछ कंधे झुकाए| कुछ चहरे पर असीम खुशियाँ लिए हुए भाग रहे हैं तो कुछ गंभीर उदासी लिए हुए भाग रहे हैं| कई जाने पहचाने चेहरे हैं, और बहुत से अनजान भी हैं| कुछ बहुत समय से साथ हैं, वहीं कुछ नये-नये मिले हैं| कई जो साथ थे वे पीछे रह गए और कई जो पीछे थे वे काफी आगे निकल गए| इस राह पर ऐसा लगता है कोई कुछ खोया हुआ ढूंढ रहा है, तो कोई कुछ नए की तलाश में है|

धूप आंधी तूफ़ान कुछ भी इन्हें नहीं रोक पा रहा है; किस चीज़ के बने हैं ये सब? मुझे भी इनकी तरह डटे रहना है| कुछ तो होगा ऐसे ही कोई इतना सब सहन नहीं करता| लोग तेज़ भागते हैं तो तेज़ हो जाता हूँ| कभी कभी थक भी जाता हूँ| कोशिश जारी है|

काफी समय हो गया है भागते हुए, कब शुरू किया था याद नहीं आता| अब तो मुझे याद भी नहीं मैं कब यहाँ पहुँच गया| अरे यह क्या समय से कदमताल करते-करते समय ही भूल गया| कि ये लोग भी समय को भूले हैं या इन्हें है तकाज़ा इस वक्त का? पता नहीं, कुछ तो अभी बाकी है जिसके लिए अभी भी इस राह पर मंजिल की तलाश जारी है|

खोया-खोया सा महसूस कर रहा हूँ| कभी-कभी अकेलापन लगता है| अपनों ने कहा था आगे जाकर हमें भूलना मत, वरना अकेलापन महसूस होगा| तो क्या मैं उन्हें भूल गया हूँ? नहीं, नहीं मैं भूला नहीं हूँ| हर एक कदम पर उनकी यादें और सीखें ही मेरे हौसला और जज्बा है| फिर भी थक तो बहुत गया हूँ, कभी मन करता है रुक कर सो जाऊं, थोड़ी झपकी ही मार लूँ मगर डर है कहीं अकेला रह गया तो क्या करूँगा| काफी कश्मकश में हूँ|

क्या इन सब लोगों को एक ही जगह जाना है? हो सकता है, पता नहीं| किसी से कभी बात नहीं हुई, मतलब हुई है, मगर इस बारे में नहीं| क्यों नहीं की पता नहीं| क्या इन सब ने जानबूझ कर नहीं की? क्या यह मुझसे कुछ छुपा रहे हैं? नहीं-नहीं ऐसा भी कोई करता है भला? यह सब अच्छे लोग हैं|

सोचता हूँ क्या इन सबको पता भी है कि हम कहाँ जा रहे हैं, पता ही होगा वर्ना कोई बेवकूफ़ ही होगा जो बिना सोचे समझे इतना दौड़े चले जा रहा है| खैर मुझे क्या, मुझे अपना मकसद पता है, जो लोग करें वही करना है|

अब दिन ढलने लगा है, सभी के चेहरे पर थकान तो है ही साथ में कुछ परेशान भी नज़र आते हैं| ख़ैर अब मैं सोता हूँ, आज के लिए काफी मेहनत हो गई है| सुबह उठकर दुबारा निकलना है इस कभी ना खत्म होने वाले सफ़र पर|

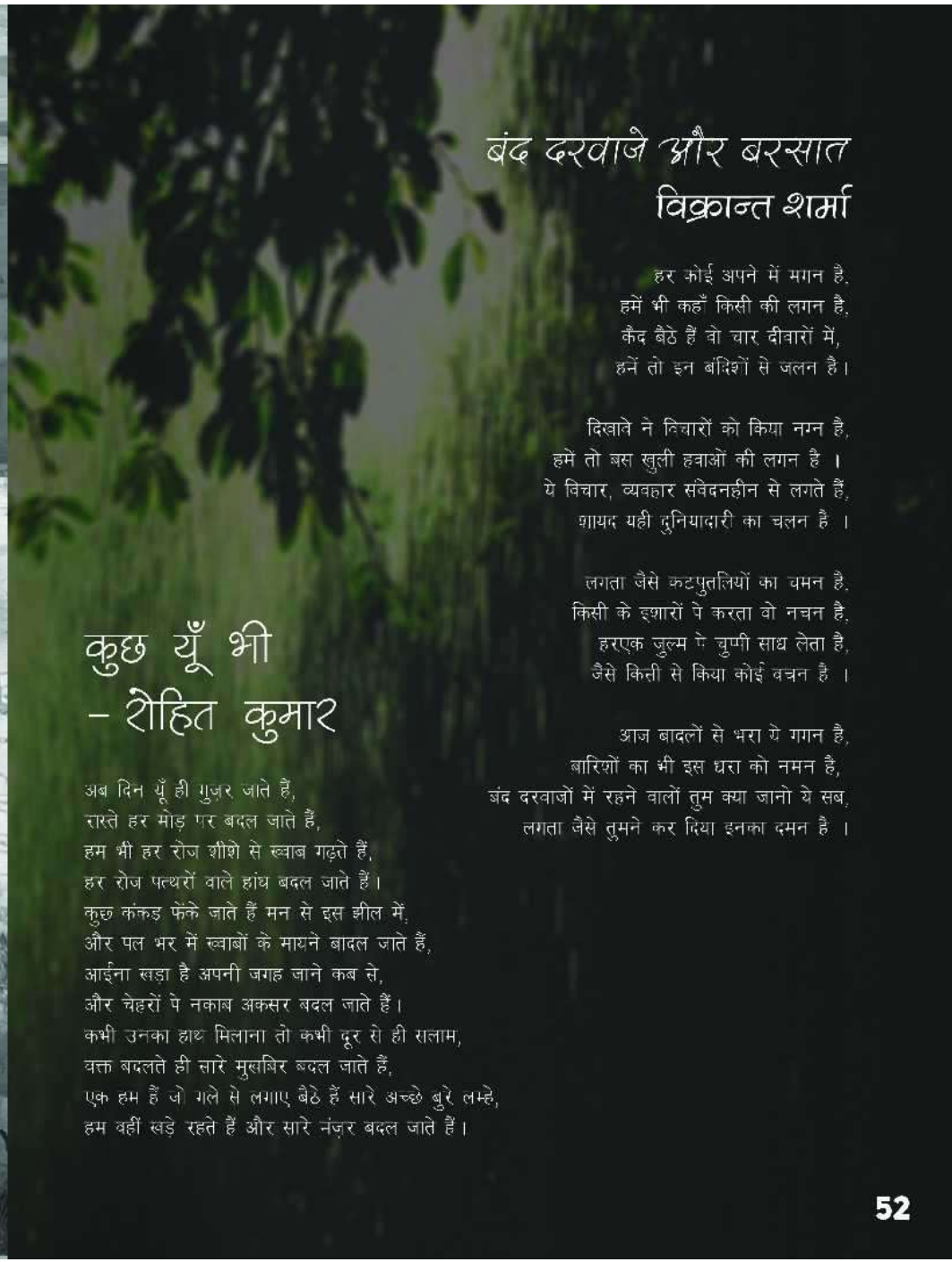

बंद दरवाजे और बरसात

विक्रान्त शर्मा

हर कोई अपने में मगन है,
हमें भी कहाँ किसी की लगन है,
कैद बैठे हैं वो चार दीवारों में,
हमें तो इन बंदिशों से जलन है।

दिखावे ने विचारों को किया नग्न है,
हमें तो बस खुली हवाओं की लगन है ।
ये विचार, व्यवहार संवेदनहीन से लगते हैं,
शायद यही दुनियादारी का चलन है ।

लगता जैसे कटपुतलियों का चमन है,
किसी के इशारों पे करता वो नचन है,
हरएक जुल्म पे चुप्पी साध लेता है,
जैसे किसी से किया कोई वचन है ।

आज बादलों से भरा ये गगन है,
बारिशों का भी इस धरा को नमन है,
बंद दरवाजों में रहने वालों तुम क्या जानो ये सब,
लगता जैसे तुमने कर दिया इनका दमन है ।

कुछ यूँ भी

– रोहित कुमार

अब दिन यूँ ही गुज़र जाते हैं,
रास्ते हर मोड़ पर बदल जाते हैं,
हम भी हर रोज शीशे से ख्वाब गढ़ते हैं,
हर रोज पत्थरों वाले हाथ बदल जाते हैं।
कुछ कंकड़ फेंके जाते हैं मन से इस झील में,
और पल भर में ख्वाबों के मायने बादल जाते हैं,
आईना खड़ा है अपनी जगह जाने कब से,
और चेहरों पे नकाब अक्सर बदल जाते हैं।
कभी उनका हाथ मिलाना तो कभी दूर से ही सलाम,
वक्त बदलते ही सारे मुखबिर बदल जाते हैं,
एक हम हैं जो गले से लगाए बैठे हैं सारे अच्छे बुरे लम्हे,
हम वहीं खड़े रहते हैं और सारे नज़र बदल जाते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन...

आवेश कुमार सिंह

इच्छा, आशा, अपेक्षा, आकांक्षा यही सब मानव समाज के चालक होते हैं। यदि कोई आप से पूछे कि आप कौन हैं? तो आपका उत्तर क्या होगा? आपको तुरंत ज्ञात हो जाएगा कि आपकी इच्छाएं ही आपके जीवन की व्याख्या हैं। अधिकतर लोग ऐसे जीते हैं कि स्वयं भीतर से मरते रहते हैं परन्तु अपनी इच्छाओं को नहीं मार पाते हैं। इच्छाएं उन्हें दौड़ाती हैं जिस प्रकार मृगतृष्णा मृग को दौड़ाता हैं। परन्तु इन्ही इच्छाओं के गर्भ में ज्ञान का प्रकाश भी हैं। मनुष्य का जीवन केवल कथामात्र नहीं हैं इच्छाओं के संघर्ष की, महत्वाकांक्षाओं से जन्म लेने वाले अनपेक्षित परिणाम की। मनुष्य का जीवन एक ऐसी यात्रा है जो जीवन का मर्म बताता हैं, मनुष्य का धर्म बताता हैं, कीचड से उठकर कमल बनने का कर्म सिखाता हैं।

सत्य का पर्याय

मनुष्य के जीवन का धर्म सदैव सत्य तथा असत्य की परिभाषा समझने में लगा रहता है, परन्तु सत्य की परिभाषा मनुष्य के जीवन के प्रत्येक तथ्यों में छिपा रहता हैं। मनुष्य समझता है कि अपनी भूल को प्रकट करना या उसे व्याख्यित करना ही सत्य हैं, परन्तु क्या तथ्यों को बोलना ही सत्य है? शायद यही प्रश्न ही सत्य का स्रोत हैं। जब हम दूसरों की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए किसी प्रसंग की व्याख्या करते है उसी क्षण सत्य तथा असत्य अस्तित्व में आता है। प्रत्येक मनुष्य की जिंदगी में ऐसे क्षण अवश्य आते है जब उसके हृदय में सत्य बोलने का निश्चय होता हैं, परन्तु दूसरों की भावनाओं को ठेस न पहुँचे। इस भय से वह उस तथ्य को बता नहीं पाता। अब प्रश्न यह उठता है कि यह सत्य क्या है?

हृदय में भय रहते हुए भी जब मनुष्य तथ्यों को बोलता है तो वही सत्य कहलाता है। वास्तव में सत्य कुछ और नहीं निर्भयता का पर्याय है। जीवन में निर्भय होने का कोई समय निर्धारित नहीं हैं क्योंकि निर्भयता आत्मा का स्वभाव हैं। अगर उपरोक्त कथनों को संज्ञान में लिया जाए तो क्या जिंदगी का प्रत्येक क्षण सत्य बोलने का समय नहीं होता हैं?

परंपरा और धर्म

परंपरा में धर्म बसता हैं और परंपरा ही धर्म को संभालने का कार्य करती हैं यह भी सत्य है। परन्तु क्या केवल परंपरा ही धर्म हैं? विचार कीजिए।

सत्य तो यह हैं कि जिस प्रकार पाषाण में शिल्प होता हैं, उसी प्रकार परंपरा में धर्म होता हैं। पाषाण में शिल्प होता हैं, पाषाण स्वयं में शिल्प नहीं होता हैं। शिल्प को उजागर करने के लिए उसे तोडना पड़ता हैं, अनावश्यक भागों को दूर करना पड़ता हैं। ठीक उसी प्रकार परम्पराओं में धर्म खोजना पड़ता हैं। स्वयं भगवान श्री कृष्ण अगर इन्द्र पूजा की परंपरा को तोड़ कर गोवर्धन पूजा का धर्म न खोजते तो शायद यादवों को उनकी मुक्ति का मार्ग नहीं मिल पाता। अर्थात् परंपरा को पूर्णता छोड़ देने वाला धर्म से वंचित रह जाता हैं और परंपरा का अंधानुकरण करने वाला भी धर्म को प्राप्त नहीं कर पाता। कहते हैं हंस के पास नीर क्षीर विवेक होता हैं, दूध में मिले पानी को छोड़ कर केवल दूध ही ग्रहण करता हैं। न्याय तथा प्रतिशोध?

स्वतंत्रता एवं सम्बन्ध

दो व्यक्ति जब निकट आते हैं तो एक दूसरे के लिए सीमाएँ एवं मर्यादाएँ निर्मित करने का प्रयत्न अवश्य करते हैं। अब यदि हम सारे संबंधों पर विचार करे तो सारे संबंधों का आधार यहीं सीमाएँ हैं जो हम दूसरों के लिए निर्मित करते है। इन सीमाओं का वास्तविक रूप क्या हैं? क्या हमने कभी विचार किया?

यदि एक दूसरे की स्वत्रता का सम्मान किया जाए तो मर्यादाओ अथवा सीमाओं की आवश्यकता ही नहीं होती अर्थात् जिस प्रकार स्वीकार किसी सम्बन्ध का देह हैं तो क्या स्वतंत्रता किसी सम्बन्ध की आत्मा नहीं हैं।

मर्यादा एवं निर्बलता

जगत में प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की निर्बलता अवश्य होती हैं। क्या इस संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति हैं जिसे सब कुछ प्राप्त हो? हम जीवन कि उस एक निर्बलता को जीवन का केंद्र मानकर जीते हैं। इस करणवश हृदय में दुःख और असंतोष रहता हैं। निर्बलता सदैव मनुष्य को जन्म से प्राप्त होती हैं, परन्तु निर्बलता को मनुष्य का मन अपनी मर्यादा बना लेता हैं। वहीं कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपने पुरुषार्थ और पराक्रम से उसे पराजित कर देते हैं। क्या भेद होता हैं उनमे और अन्य लोगों में? क्या यह किसी ने कभी विचार किया हैं? सरल सा उत्तर हैं, जो व्यक्ति निर्बलता से पराजित नहीं होता। जिसके हृदय में अपने पुरुषार्थ से जीतने का साहस रहता हैं।

निर्णय का प्रभाव

जीवन का हर एक क्षण निर्णय का क्षण होता हैं, प्रत्येक पग पर दूसरे पग के विषय में कोई न कोई निर्णय करना ही पड़ता हैं और निर्णय अपना प्रभाव छोड जाता हैं। आज किए गए निर्णय भविष्य में सुख अथवा दुःख निर्मित करते हैं। जब कोई दुविधा सामने आती हैं तो मन व्याकुल हो जाता है, अनिश्चय से भर जाता हैं। निर्णय का वह क्षण युद्ध बन जाता हैं और मन बन जाता हैं युद्धभूमि, अधिकतर निर्णय हम दुविधा के उपाय के लिए नहीं वरन् मन को शांत करने हेतु करते हैं।

वास्तव में जब कोई शांत मन से निर्णय करता हैं तो अपने लिए सुखद भविष्य बनाता हैं, किन्तु अपने मन को शात करने हेतु जब कोई मनुष्य निर्णय करता हैं तो वह मनुष्य अपने लिए भविष्य में काँटों भरा वृक्ष लगाता हैं।

निर्णय पर धर्म का प्रभाव

निर्णय के क्षण में हम सदा ही अन्य के सुझाव, सूचना, परामर्श अथवा मंत्रणा को आधार बनाते हैं और हमारे भविष्य का आधार आज हमारे द्वारा लिए गए निर्णय पर निर्भर करता हैं। तो क्या हमारा भविष्य किसी अन्य के सुझाव, किसी अन्य के परामर्श का फल हैं? क्या हमारा सम्पूर्ण जीवन किसी अन्य की बुद्धि का परिणाम हैं?

निर्णय के मार्ग

भविष्य के आधार पर सब आज निर्णय लेना चाहते हैं। भविष्य में सुख मिले, भविष्य सुरक्षित हो। मनुष्य कुछ ऐसे ही निर्णय आज लेने का प्रयत्न करता हैं। अगर किसी भी मनुष्य के जीवन यात्रा को देखे और गौर करें तो पाएंगे कि अधिकतर निर्णय के पीछे भविष्य का विचार होता हैं।और ऐसा करना लाजिमी भी हैं क्योंकि अपने भविष्य को सरल और सुखमय बनाने का अधिकार सबको हैं। परन्तु भविष्य का यथार्थ ज्ञान किसी को नहीं होता हैं इसकी केवल कल्पना कि जा सकती हैं। इस प्रकार जीवन के समस्त महत्वपूर्ण निर्णय कल्पनाओं के आधार पर ही हम करते हैं।

भविष्य के मार्ग का निर्धारण

माता पिता सदा ही अपने संतानों के सुख की कामना करते हैं, उनके भविष्य की चिंता करते रहते हैं। इसी कारणवश सदा ही अपने संतानों के भविष्य का मार्ग स्वयं निश्चित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। जिस मार्ग पर पिता स्वयं चला हैं, जिस मार्ग के कंकड़ पत्थर को स्वयं ही देखा हैं। मार्ग की छाया मार्ग की धूप को स्वयं ही जाना हैं। उसी मार्ग पर उसका पुत्र भी चले, यही इच्छा रहती हैं हर पिता की। निःसंदेह उत्तम भावना हैं यह किन्तु तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार कारण हम भूल ही जाते हैं।

प्रथम प्रश्न क्या समय के साथ प्रत्येक मार्ग बदल नहीं जाते? क्या समय सदा ही नई चुनौतियाँ लेकर नहीं आता? तो फिर बीते हुए समय का अनुभव नयी पीढ़ी को किस प्रकार लाभ दे सकती हैं?

दूसरा प्रश्न क्या प्रत्येक संतान अपने माता पिता की छवि होता हैं? हाँ संतानों को संस्कार तो अवस्य ही माता पिता से प्राप्त होती हैं, परन्तु भीतर की क्षमता, भीतर की क्षमता तो ईश्वर प्रदान करते हैं। तो जिस मार्ग पर पिता को सफलता मिली हैं तो क्या विश्वास हैं की उसी मार्ग पर उसके संतानों को भी सफलता और सुख प्रदान होगा?

तीसरा प्रश्न क्या जीवन की संघर्ष एवं चुनौतियाँ लाभकारी नहीं होती हैं? क्या प्रत्येक नया प्रश्न एक नए उत्तर का द्वार नहीं खोलता हैं? तो फिर संतानों को नये नये प्रश्नों संघर्षो से दूर रखना क्या उनके हित में उठाया गया कदम कहलाएगा अथवा हानिकारक ?

योजनाएँ एवं जीवन-पथ

कभी कभी कोई घटना मनुष्य कि सारी योजना तोड़ देती हैं और मनुष्य उस आघात को अपने जीवन का केंद्र मान लेता हैं। परन्तु क्या भविष्य मनुष्य कि योजनाओं के आधार पर निर्मित होती हैं? शायद नहीं, जिस प्रकार ऊँचे पर्वत चढने वाला पर्वतारोही पर्वत की तराई में बैठकर जो योजना बनाता हैं, क्या वही योजना उसे ऊस पर्वत कि छोटी तक पहुचाती हैं? नहीं वास्तव में वह जैसे-जैसे ऊपर चढ़ता हैं, उसे नई-नई चुनौतियाँ, नई-नई बिडम्बनायें, नए-नए अवरोध मिलते हैं। प्रत्येक पग पर वह अपने अगले पग का निर्णय करता हैं। प्रत्येक पग पर उसे अपनी योजनाओं को बदलना पड़ता हैं कि कहो पुरानी योजना उसे खाई में न धकेल दे। वह पर्वत को अपने योग्य नहीं बना पता, केवल स्वयं को पर्वत के योग्य बना पता हैं। क्या जीवन के साथ भी ऐसा नहीं हैं जब मनुष्य जीवन के किसी एक चुनौती को अपने जीवन का अवरोध मान लेता हैं तब वह अपने जीवन के गति को ही रोक देता हैं। इस प्रकार वह अपने जीवन में सफल नहीं बन पाता और न ही सुख और शान्ति प्राप्त कर पाता हैं, अथार्थ क्या जीवन को अपने योग्य बनाने के बदले स्वयं अपने को जीवन के योग्य बनाना सफलता और सुख का एकमात्र मार्ग नहीं हैं? यह प्रश्न निश्चित रूप से विचारणीय हैं।

जीवन-वृत्त एवं श्रेष्ठता

श्रेष्ठता का क्या अर्थ हैं? श्रेष्ठता का अर्थ हैं दूसरों से अधिक ज्ञान प्राप्त करना अर्थार्थ मूल्य इस बात का नहीं हैं की कितना ज्ञान प्राप्त किया बल्कि मूल्य इस बात का हैं की दूसरों से कितना अधिक प्राप्त किया। श्रेष्ठता की इच्छा ज्ञान प्राप्ति को भी एक स्पर्धा बना देती हैं और स्पर्धा में विजय अंतिम कब होती हैं?

कुछ समय के लिए तो श्रेष्ठ बना जा सकता हैं परन्तु सदा के लिए कोई श्रेष्ठ नहीं रह पाता। फिर वही असंतोष, पीड़ा और संघर्ष जन्म लेता हैं। अब मान लीजिए कि श्रेष्ठ बनने की बजाय उत्तम बनने का प्रयास किया जावे तो क्या होगा? उत्तम का अर्थ हैं जितना प्राप्त करने योग्य हैं वो सब प्राप्त करना किसी से अधिक प्राप्त करने की इच्छा से नहीं अपितु आत्मा की तृप्ति हेतु प्राप्त करना। उत्तम के मार्ग पर किसी अन्य से स्पर्धा नहीं होती स्वयं अपने आप से होती हैं, अर्थार्थ उत्तम बनने का प्रयास करने वाले को देर सवेर सारा ज्ञान प्राप्त हो जाता हैं। बिना प्रयत्न के ही वह श्रेष्ठ बन जाता हैं, किन्तु जो श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करता हैं वो श्रेष्ठ बने अथवा न बने परन्तु उत्तम कभी नहीं बन पाता हैं।

पिता का पत्र

सत्यम पराशर

प्रिय मोहित,

आशा करता हूँ कि वहाँ सब कुशल मंगल होगा। फोन पर तुमसे इतनी बाते होने के बाद भी कुछ अधूरा सा महसूस होता है। यही कारण है कि संचार क्रान्ति के इस युग मे भी पत्राचार से तुमसे कुछ दिल की बाते कर रहा हूँ। समय की गति बहुत तेज है, परन्तु वह दिन आज भी मेरी आँखों मे जीवंत है जब तुमने इस दुनिया मे कदम रखा था।

समय के साथ शायद इस दुनिया ने बहुत कुछ खोया है, और हम भी इसी दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाते हुए बहुत कुछ खो चुके है। आज सफलता के मायने बदल गए है जिंदगी मे महत्व रखने वाली शान्ति तथा संतोष का स्थान आज शोहरत तथा दौलत ने ले लिया है उन दिनो किसी की सफलता को मापने के लिए उसकी प्रसिद्धि का सहारा नही लिया जाता था। एक व्यक्ति जो ईमानदारी से अपना काम करता था और अपने बूढे माँ बाप और परिवार का ख्याल रखता था, वह भी उतना ही सफल कहलाता था जितना कोई रईस अपनी दौलत के लिए।

वे दिन याद है जब तुम गाँव जाने के लिए गर्मी की छुट्टियों का इंतजार किया करते थे और रेलगाडी पर खिडकी के पास बैठ कर पूरे रास्ते बडी जिज्ञासा से हर चीज पर सवाल किया करते थे? गाँव मे बुआ, दादी, मामा, नानी सब के चहेते रहते थे और दिन भर अपनी चंचलता से सब को तंग किया करते थे। परन्तु अब इस आपाधापी मे तुम्हारे पास गाँव जाने का वक्त कहाँ? अगर हम अपने रोजमर्रा के कामो मे इतने मसरुफ ना होते और गाँव अगर गाँव ही रहते तो रिश्तों की डोर इतनी कमजोर न पडती। जिंदगी की इस अंधी दौड मे शायद अब सबके लिए यह रिश्ते बेमानी हो गए लेकिन इन रिश्तों पर अपने कीमती समय के कुछ छींटे भी अगर मार दिए जाएँ तो शायद इनके अंदर का वह प्यार फिर से पनप उठेगा।

तुम्हारी माँ आए दिन कहती है कि यह आलू का पराँठा छोटू को बहुत पसंद है, अगर यहाँ होता तो बडे चाव से खाता। ममता उसे यह पूछने पर मजबूर भी कर ही देती है कि वह पढाई किस काम की जो ऐसा आविष्कार न कर सके कि खाना भी बातो की तरह टेलीफोन से ही विदेश पहुँच जाए? बेटे सच कहूँ तो तुम्हारे बिना मुझे भी खाने की टेबल पर एक अजीब सूनापन सा लगता है। तुम्हारी माँ तो दिन भर तुम्हारी पसंद नापसंद, तुम्हारी आदते, तौर तरीके इन्ही सबके बारे मे बात करके मन बहलाती है।

गाँव से शहर जाते वक्त तुम्हारे दादा जी ने मुझसे कहा था कि "अंक चाहे कम आ जाएँ, मगर अपने चरित्र और ईमानदारी को कभी मत खोना।" मै भी तुमसे यह उम्मीद रखता हूँ कि भटकाव और ठहराव के अंतर को हमेशा ख्याल मे रखकर ही कोई भी फैसला करोगे। पलायनवाद सृष्टि का नियम है, इसमे कुछ गलत भी नही है। मगर यह न भूलो कि हम उस संस्कृति से है जहाँ वसुधैव कुटुम्बकम् के साथ साथ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी को भी महत्व दिया गया है।

तुम्हारी माँ को तुम्हारे अंको से कोई फर्क नही पडता, इस पत्र को लिखते वक्त पूरे समय यही बैठी एक ही बात लिखने के लिए दोहराए जा रही है "लिखिए कि अपनी तबीयत का ख्याल रखे, और पैसो की चिंता न करे।"

उसके प्रेम की इस तीव्रता के सामने शायद मेरी बाते कुछ नही है, मगर फिर भी एक बार इत्मिनान से विचार करना।

तुम्हारा पिता

नज़र

उत्कर्ष गुप्ता

वो अक्सर मेरी आँखों की तारीफें किया करती है
कहती है ये बहुत खूबसूरत हैं, इतनी खूबसूरत
डर है कहीं मेरी ही नज़र न लग जाए
उसको दिखता है सितारा मेरी आँखों में चमकता हुआ
जिसकी चमक इतनी के चाँद भी शर्मा जाए
कहती है किसी शायर का ख्वाब बसता है इनमें
जिसे वो गुनगुना चाहती है
किसी गज़ल का अंतरा अधूरा छूटा हुआ
जिसे वो पूरा करने की कोशिश करती है
कहती है उसको दिखाई पड़ती है एक तस्वीर
जिसे ताकती रह सकती है वो रात-दिन
कहती है दिखता है चेहरा एक बेगाना
ना जाने आपना सा क्यों महसूस होता है उसको
एक नशा सा है जिसमे डूब जाने का दिल करता है
वो अक्सर हमारी आँखों की तारीफें किया करती है
और अक्सर उसे मैं ये बताना भूल जाता हूँ
वही तो है जो इन आँखों में बसा करती हैं ।

सरदार

प्रांजल दीप

सरदार किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था। आज पूरी टोली के चहेते रुप्पन बाबू विलायत निकलने वाले थे। पिछले तीस सालों में, जबसे वो इस टोली के हिस्सा है, टोली से किसी ने भी गाँव के बाहर कदम तक नहीं रखा था। हाँ एक बार ज़रूर पटवर्धन काका मुँह लटकाए, दारु के नशे में धुत, पूनम की अँधेरी रात को चलते-चलते मोहनलालगंज बस अड्डे तक पहुँच गए थे। वो तो पड़ोसी गाँव के छप्पन सिंह ने उन्हें पहचान लिया और कान पकड़ कर वापस भाकरमंडी ले आए। वरना पटवर्धन काका जैसे गंजेड़ी का क्या भरोसा, एक बार जो बस चल देती, तो पूरे शहर भर में भाकरमंडी की नाक कटा कर आते। पर रुप्पन बाबू तो समझदार थे। हजारों मौकों पर उन्होंने अपनी समझदारी भरे कारनामों से टोली की लाज बचाई हैं। इस बार भी जब उनका विलायत जाना तय हुआ, पूरे भाकरमंडी का सीना दो इंच चौड़ा हो गया। आज सुबह ही गोधन आस पास के गाँवों का खबर लेने गया था। सरदार सरपंच के साथ बैठ कर कुछ सोच विचार कर रहे थे की सामने से गोधन आता दिखाई दिया।

"कहो रे गोधन? क्या हाल हैं?"

"अरे पूछो ना सरदार। आज तो जो स्वागत हुआ है अपना हर जगह, सौ साल तक याद रहेगा!"

"ऐसा क्या हो गया?"

"अब पूछ ही रहे हो तो आराम से बैठ जाओ बताता हूँ। हुआ यह कि सुबह उठते ही हम सीधे मोहनलालगंज पहुँच गए। वहाँ बोल दिए कि हमारी गाय छूट के भागी थी, उसी के पीछे आए हैं। अब किसी को शक थोड़ी ना होने देना था कि खबर लेने आए हैं। बात-बात में धीरे से रुप्पन बाबू का नाम छेड़ दिया। फिर जो तो सवालों की बौछार! पता नहीं कब ग्यारह बज गए। तभी बिमला बुआ ने गुड की भेली और बेल का शरबत परोसा। बोलीं अपने गोधन को खाली पेट थोड़ी जाने देंगे। बस फिर इत्मिनान से सब सफाचट कर निकल लिए झकरकट्टी के लिए।"

"यह बात तो तुमने गजब की बताई। पिछली बार रामलीला पर यह मोहनलालगंज वाले कितनी ही हुड़दंग मचा रखे थे। कोई तमीज़ नहीं। आज आ गए औकात पर।"

"अरे अभी तुम रुको सरपंच बाबू। पहले झकरकट्टी की कहानी तो सुन लो। अब यहाँ ये बहाना तो ना चल पाता। वो

"अरे अभी तुम रुको सरपंच बाबू। पहले झकरकट्टी की कहानी तो सुन लो। अब यहाँ यह बहाना तो ना चल पाता। वो तो कोई भी ससुर का नाती बता देगा कि छोटी पहाड़ी लाँघ के कोई भी गाय या बैल कभी भाकरमंडी से झकरकट्टी ना जा पाएँगी।"

"फिर क्या बोले? बता तो नहीं दिए कहीं?"

"का बात करते हो सरदार। इतना ही भरोसा करते हो गोधन पर। हम बोले कि लौंडों के साथ गिल्ली डंडा खेलने आए हैं। खैर अब जब तपाक से बोल दिए थे तो खेलना भी पड़ गया। फिर तो गोधन का डंडा था और झकरकट्टी की गिल्ली। गिल्ली को पूरी झकरकट्टी की सैर ना करा दी हो तो गोधन को रात भर अस्तबल में बांध देना और सुबह भी ना निकालना। लौंडों की बोलती बंद करा दिए। फिर जब सब थक के आराम करने बैठ गए तो हम बोले कि रुप्पन बाबू विलायत से गिल्ली डंडा ला रहे हैं। सब आँखे चौड़ी करके हमें घूरने लगे। सबकी आँखों में एक ही सवाल। रुप्पन बाबू और विलायत! फिर हम भी छाती फूला करके कहे कि हाँ भाई रुप्पन बाबू विलायत जा रहे हैं। भाकरमंडी वाले रुप्पन बाबू छोटे ने तो हमारा पैर ही पकड़ लिए। फिर शाम तक पूरे गाँव में खबर फैला के सीधे यहीं लौट आए।"

"शाबाश गोधन। आज तो इनाम लायक काम किए हो।"

"अरे हमारी तारीफें तो होती रहेंगी, पहले ज़रा प्यास बुझा लें। ससुरा कब गला सुख गया पता ही नहीं चला। काका, मुनरी होगी अंदर?"

"हाँ हाँ। आवाज़ लगा दो ज़रा, अभी पानी लिए आएगी।"

"अंदर जा कर ही पी लेते हैं। आप यह बताइए कि रुप्पन बाबू हैं किधर? निकलने से पहले एक बार दर्शन तो कर लिए जाएँ।"

"कुछ कागज़ात वगैरह के सिलसिले में रजिस्ट्री गए थे। लौट ही रहे होंगें। अरे वो देखो। नाम लिया और हाज़िर। का हो रुप्पन। सब काम फिट?"

रुप्पन बाबू गाँव के सबसे पढ़े लिखे और समझदार इंसान माने जाते थे। एक समय पर इनके परदादा के दादा तीन जिलों के ज़मीदार हुआ करते थे। फिर एक दिन एक अबला नारी पर नज़र पड़ी तो प्यार में ऐसे पागल हुए कि बात ना बनने पर सब कुछ त्याग के सन्यासी बन बैठे। सारी ज़मीन किसानों में बाट दी। फिर भी पुश्तैनी दौलत खूब बची रही। पैसा इतना था तो रुप्पन को डाल दिया सबसे महंगे स्कूल में और इधर रुप्पन भी निकले अव्वल नंबर के होशियार। जिस कक्षा में जाएँ, वहाँ वाह-वाही; जिससे पूछो, तारीफें! स्कूल पास करने तक हर कोई उन्हें

प्रचंड विद्वान मानने लगा था। गाँव में किसी से बात करें तो ज़बान से लपालप जो अंग्रेजी निकलती थी कि सुनने वाले के आँसू निकल आते।

"Yes, yes सरदार। इतनी भागादौड़ी करने के बाद सारा काम खत्म हो ही गया। Afternoon में तो हमें लगने लगा था कि यहाँ कुछ ना हो पायेगा। विलायत की dreams अब बस dreams ही रह जायेंगी। फिर lunch के बाद संजय भैया duty पर आए। My god! quickly सारा काम खत्म करा दिया। जो तो बाबूओं को अपनी उंगली पर नचा रहे थे! सारा paperwork finish! अब तो बस two days later का इंतज़ार है। फिर देखिये कैसे foreign जाकर नाम कमाएंगे।"

"बहुत खूब रुप्पन। शाबाश। अरे ओ मुनरी... ज़रा शक्कर तो लाना।"

"अरे ना ना सरदार। हम ज़रा sugar avoid करते हैं। वो थोड़ा diabetes हो रखा है ना। वैसे भी अब हम चलते हैं। कल early morning उठ कर सामान रखना है। निकलने से पहले ज़रूर मिलेंगे। नमस्ते।"

"रुप्पन बाबू थोड़ा ठहरिये। हम भी हवेली तक साथ चलते हैं। काफ़ी सारा काम पड़ा होगा, हाथ बटा देंगे। आप भी याद रखेंगे विलायत में कि गोधन ने कितनी मदद कर डाली थी।"

कहते हुए गोधन भी रुप्पन बाबू के साथ निकल लिया हवेली की ओर। अँधेरा बढ़ने लगा था तो सरपंच भी अलविदा बोल, वापस चल दिए। घर के अंदर से मुनरी की चूल्हा जलाने की आवाज़ आ रही थी और घर के बाहर बैठा सरदार, किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था।

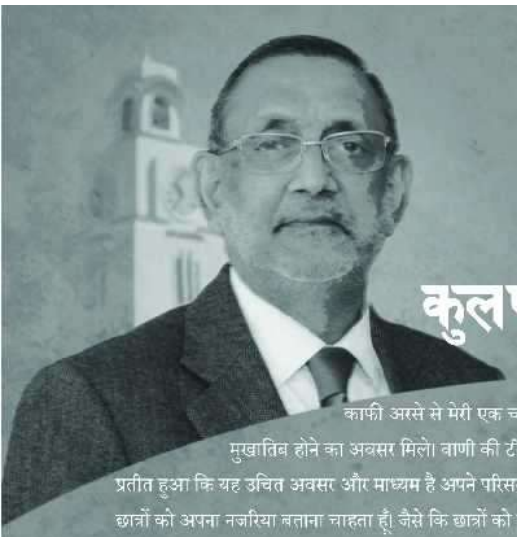

कुलपति के मन की बात

काफी अरसे से मेरी एक चाहत रही है कि अपने परिसर के विद्यार्थियों से अनौपचारिक रूप से मुखातिब होने का अवसर मिले। वाणी की टीम ने जब खुद पहल करते हुए मेरी सामान्य राय जाननी चाही तो मुझे प्रतीत हुआ कि यह उचित अवसर और माध्यम है अपने परिसर के विद्यार्थियों से बात करने का। कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर मैं सदा ही छात्रों को अपना नजरिया बताना चाहता हूँ। जैसे कि छात्रों को डिग्री, अच्छे ग्रेड से ऊपर उठकर सोचना चाहिए, ताकि जब विद्यार्थी कैम्पस को छोड़कर जाएँ तो वास्तव में उनके अंदर एक आत्मविश्वास हो। वह यहाँ से जो कुछ भी सीखकर जा रहे हैं उसका इस समाज की बेहतरी में उपयोग में लाया जा सके। वे कहीं भी काम करें, चाहे वो कोई कंपनी हो अथवा एन.जी.ओ., सरकारी नौकरी हो या अध्यापन, उन्हें अपने ज्ञान का उपयोग पता होना चाहिए। और इस लक्ष्य की प्राप्ति में जो चीज सबसे ज्यादा मुझे परेशान करती है, वो यह है कि यहाँ की कक्षाओं में छात्रों की बेहद कम उपस्थिति। इसका एक कारण छात्रों के अनुसार यह है कि यहाँ के शिक्षक अच्छे नहीं हैं। इस बात को मैं मानने को तैयार नहीं हूँ। हो सकता है कि 100 में से दो-चार ऐसे होंगे जो बढ़िया नहीं पढ़ा पाते होंगे। लेकिन मेरे अपने आकलन से यह लगता है कि नब्बे फीसदी शिक्षक काफी अच्छा पढ़ाते हैं। अन्य 10 से 20 फीसदी शिक्षक और भी ज्यादा अच्छे तरीके से पढ़ाते हैं। और मैं यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि जो हम पढ़ाते हैं, चाहे अच्छा पढ़ाते हैं या बुरा, विद्यार्थीगण वो समस्त चीजें अपने आप से सीख लेते हैं। घर में बैठकर, कमरे में बैठकर, किताबों को पढ़कर कोई काफी कुछ सीख सकता है। लेकिन मेरा सोचना है कि प्रोफ़ेसर के साथ कहीं ज्यादा सीखा जा सकता है। और यह एक ऐसा विस्तृत विचार है जो मुझे पिछले कई दिनों से सता रहा है।

इस विचार के समाधान के कई पहलू हैं, एक तो सबसे साधारण यह है कि इस बात की हम चिंता न करें, दूसरा यह है कि हम कुछ कड़े कदम उठायें, और यह कहें कि कक्षाओं में उपस्थित होना जरूरी है और इसकी कुछ न्यूनतम सीमा निर्धारित कर दी जाए। जैसे कि आपको 50 अथवा 60 फीसदी कक्षाओं में उपस्थित होना अनिवार्य है। लेकिन होगा यह कि बच्चे आयेंगे, कक्षा में उपस्थिति दिखायेंगे, फिर चले जायेंगे या फिर सो जायेंगे या फिर कुछ गप मारेंगे। मैं यह भी नहीं चाहता। जो विचार मुझे सबसे उपयुक्त लगता है वो यह है कि हमारी यह कक्षा में उपस्थिति जाँचने वाली प्रक्रिया पूरी तरह से धांधली मुक्त होनी चाहिए। परन्तु बड़ा सवाल यह है कि हम इस उपस्थिति के रिकॉर्ड का करेंगे क्या? या तो विभागाध्यक्ष को सूचित किया जाये कि किस अध्यापक की कक्षा का क्या रिकॉर्ड है। उस पर वह जो भी संभव हो, सलाह दें या कार्रवाई करें। लेकिन अगर गौर किया जाए तो आप कोई कार्रवाई नहीं कर सकते, क्योंकि इसमें शिक्षक का कोई दोष नहीं है। वह आंशिक रूप से जिम्मेदार है परन्तु पूर्णतः नहीं। मुझे जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात लगती है वह यह है कि विद्यार्थी को स्वयं पता चले कि उसकी कक्षा में उपस्थिति कितनी है? दूसरी बात यह है कि शिक्षक को पता होना चाहिए कि कौन बच्चे आ रहे हैं और कौन नहीं? यह भी पता होना चाहिए कि यदि कोई छात्र आ रहा

था तो उसने एकाएक आना क्यों बंद कर दिया? इन दोनों कारण में शिक्षक बच्चे को बुला कर यह बात कर सकता है कि आखिरकार समस्या क्या है? तो मैं सोचता हूँ कि अगर उपस्थिति नियमित रूप से रिकॉर्ड की जाए जिसे एक व्याख्यित रूप में शिक्षक और छात्रों को बताया जा सके तो काफी परिवर्तन देखने को मिल सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या उपस्थिति (attendance record) आपके अभिभावकों को भेजी जाए? मुझे इस बारे आप लोगों की राय चाहिए। मैं समझता हूँ कि जो अभिभावक आपकी सम्पूर्ण शिक्षा के लिए इतना ज्यादा खर्च करते हैं उन्हें इस बात का पता लगना चाहिए। वहीं मैं यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि जिसे मतदान का अधिकार मिल चुका है उसे क्या इतना ज्ञान नहीं है कि उसे क्लास अटेंड करनी है या नहीं। कई अभिभावक मुझसे यह शिकायत करते हैं कि उनके बच्चे क्लास नहीं जाते। इस कारण कुछ नए इलेक्ट्रोनिक सिस्टम लाए जा रहे हैं। यदि यह सिस्टम बिट्स में सफल रहता है तो मैं सोचता हूँ कि यह व्यवस्था सम्पूर्ण देश में लायी जाये। इस डाटा के आधार पर हम कुछ और विश्लेषण कर सकते हैं कि जो बच्चे कक्षाएँ गए हैं और जो नहीं गए हैं, उनके परिणामों में क्या फर्क आया है? मेरा यह आकलन है कि इन दो प्रकार के विद्यार्थियों में काफी अंतर देखने को मिलेगा। यदि आप मानना चाहते हैं तो इस बात से मान जायेंगे कि यदि मैं क्लासेज़ जाता हूँ तो मेरी परफार्मेंस काफी सुधर जाएगी। और यह व्यवस्था शिक्षा-क्षेत्र में काफी परिवर्तन ला सकती है। यहाँ तक कि इस व्यवस्था का फायदा गाँव के उस छोटे स्कूल में भी देखने को मिल जाएगा जहाँ शिक्षक काफी अनियमित होते हैं। सरकार की कई योजनाओं की हकीकत धरातल पर देखी जा सकती है। खासकर अर्द्ध-शहरी तथा ग्रामीण इलाकों में इस व्यवस्था का प्रभाव व्यापक रूप से देखने को मिल सकता है। आने वाले समय में मैं यह प्रक्रिया सम्पूर्ण बिट्स में देखने के लिए उत्सुक हूँ।

एक दूसरी बात जो मैं आपके साथ बाँटना चाहता हूँ वो यह है कि हम यहाँ परिसर में जितनी भी गतिविधियाँ करते हैं उसकी जानकारी किसी एक बेहतर माध्यम से हमारे पुराने छात्रों (एलुमनाई) तक पहुँचनी चाहिए। हमारे कैम्पस की तमाम गतिविधियों से एलुमनाई अनभिज्ञ रहते हैं। इससे यह होगा कि वो आपसे अपने आप को जोड़ पायेंगे। मैं सोचता हूँ कि यह बहुत महत्वपूर्ण है कि प्राचीन छात्रों के साथ आपका मेल जोल बना रहे। चाहे वो प्लेसमेंट की वजह से हो या प्रैक्टिस स्कूल की वजह से। मेरा कहना यह है कि अगर हमारे 50 से 60 हजार अलुम्नाई हैं तो वो कहीं न कहीं अच्छी जगह पर ही कार्यरत होंगे। अलुम्नाई हमें बहुत कुछ दे सकते हैं, परन्तु बिट्स पिलानी में हम इस बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। आई.आई.टी. दिल्ली में मैं एलुम्नाई अफेयर्स का डीन था। एलुम्नी पाँच-पाँच लाख डॉलर तक का अनुदान करते थे। और उस राशि से हम आई.आई.टी. में स्कूल आदि कि स्थापना करते थे। हमें लगता है कि जितना अच्छा एलुम्नाई आपको समझ सकते हैं, कोई अन्य नहीं समझ सकता। वे जानते हैं कि आपका यहाँ रहन सहन कैसा है। अभी हाल ही में हमारे यहाँ के कुछ एलुम्नाई ने भी यहाँ की खेल कूद की सुविधाओं को सुधारने हेतु काफी कदम उठाये हैं। उन्होंने नए बास्केटबॉल कोर्ट, बैडमिंटन तथा टेनिस कोर्ट बनवाए। अभी मुझे अगर कोई मिल जाए तो मैं व्यक्तिगत स्तर पर चाहूँगा कि कैम्पस में एक नया स्विमिंग पूल बने।

अगर कोई आज मुझसे बिट्स के बारे में पाँच विशेष बात पूछे तो मैं सबसे पहले कहना चाहूँगा कि यहाँ शिक्षकगण बच्चों का खास ख्याल रखते हैं, किसी भी आई.आई.टी. की तुलना में। दूसरी बात यह कि शिक्षकगण पढ़ाने एवं सिखाने की प्रक्रिया पर शोध में कहीं ज्यादा समर्पित हैं। तीसरी चीज़ यह कि यहाँ के शिक्षकगण नए-नए विचारों के लिए पर्याप्त रूप से उत्साहित हैं। वहीं इसी क्षेत्र में विद्यार्थी इनके बराबर अथवा इनसे कहीं ज्यादा रचनात्मक हैं नए विचारों को लेकर। जो पाँचवी चीज़ है वह यह कि विद्यार्थियों की शोध एवं विकासशील प्रोजेक्टों में भागीदारी बहुत कम है। चौथा वर्ष आते ही विद्यार्थी कहीं अच्छी जगह प्रैक्टिस स्कूल की आस रखने लगते हैं। और हमें इस बात पर बहुत गर्व भी है कि हमारे पास प्रैक्टिस स्कूल जैसा एक प्रोग्राम हैं जहाँ विद्यार्थी अपने ६

महीने इण्डस्ट्रीज में व्यतीत करते हैं। वे लाइव प्रोजेक्ट पर काम करते हैं यह बहुत ही बढ़िया बात है, परन्तु इसका क्या नतीजा निकला? यह जितने भी स्टूडेंट हैं वह सब थीसिस नहीं करते हैं, बहुत कम लोग थीसिस करते हैं, बहत कम लोग 6 महीने लगाकर किसी फैकल्टी मेम्बर के साथ प्रोजेक्ट पर काम करते हैं। सभी पी.एस. पर चले जाते हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि यह नहीं होना चाहिए, परन्तु अगर मात्र 25 फीसदी विद्यार्थी भी यहाँ रुककर थीसिस पूरा करें तो उस शोध का जो परिणाम होगा वह बहुत ही उत्साहवर्धक होगा। जब हम देखते हैं कि दक्षिण भारत के किसी कॉलेज के बच्चों ने एक उपग्रह कक्षा में पहुँचाया तो हम सोचते हैं कि हमारे यहाँ इस प्रकार की चीजों में भागीदारी बहुत कम है। दो-तीन प्रोजेक्ट हैं जिनके बारे में हम सुनते हैं, एक तो जो फार्मूला-1 की तर्ज पर जो कार बनाई गई है, एक रोबोट बनाया गया हैं अच्युत के नाम से। क्यों हमारे पास ऐसे अधिक प्रोजेक्ट नहीं हैं? हमारे पास तमाम विकल्प मौजूद हैं, जैसे कि हॉट एयर बैलून की मदद से हम कुछ प्रोजेक्ट कर सकते हैं। जैसे कुम्भ मेला हो रहा है और उसे संचालित करने के लिए हॉट एयर बैलून में हम एक कैमरा लगा दें। जहाँ भी कोई असुविधा हो, हम कैमरे में देखकर तुरंत प्रभावी कदम उठा सकते हैं। एक ओर जो प्रोजेक्ट मेरे दिमाग में हैं वह यह है कि हम क्यों न इस तकनीक में सौर ऊर्जा का उपयोग करें? गुजरात में एक बहुत ही सफल प्रोजेक्ट यह है कि नहरों के ऊपर सौर पैनल लगाकर बिजली का उत्पादन किया जा रहा है। मैं पसंद करूँगा अगर कोई विद्यार्थी इस प्रकार के महत्त्वाकांक्षी प्रोजेक्टों पर काम करता है। वास्तव में मैं कोई नया विचार नहीं दे रहा हूँ विश्व में कई लोग ऐसे विचारों पर काम कर रहे हैं। इन सब कार्यों में कोई बहुत उच्च तकनीक की आवश्यकता नहीं है यह मात्र इंजीनियरिंग है। अभी तीन चार महीने पहले अपने ही संस्थान में आग लगी थी। अब अंदर तो आग लगी थी हमें बाहर यह भी नहीं पता चल रहा था कि अंदर आखिरकार हो क्या रहा है। अब इसका समाधान क्या है?

अगर हमारे पास ऐसा ड्रोन होता, जो अंदर जाता और हमें अंदर की स्थिति के कुछ चित्र भेजता तो हमें यह अंदाजा लग जाता कि क्या स्थिति है। हम उस हिसाब से कार्रवाई करते। या फिर अभी कुछ वर्षों पहले जैसे मुंबई में आतंकी हमला हुआ था तो हम ड्रोन भेजकर आतंकियों की स्थितियों का जायज़ा ले सकते थे। इस प्रकार के प्रोजेक्ट हमारे सामरिक क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तो अंत में पांचवी बात यही है कि मैं चाहूँगा कि विद्यार्थी यहाँ रुकें और ऐसे कुछ प्रोजेक्ट्स पर काम करें। जब हम बड़ी-बड़ी हस्तियों जैसे बिल गेट्स या जुकरबर्ग की बात करते हैं तो वह क्या करते थे? हॉस्टल में बैठकर ऐसी रचनात्मक चीजों पर अपना समय व्यतीत करते थे। जब उन्हें लगा कि उनके विचार एक मुकाम तक पहुँच गए तो वो निकल पड़े अपने सफर पर। मैं चाहता हूँ कि बिट्स पिलानी से भी कुछ इस प्रकार के धुरंधर निकलें। और मेरे हिसाब से यह प्रैक्टिस स्कूल जाकर ऐसे विचार तो आने से रहे। प्रैक्टिस स्कूल अच्छा है लेकिन हमें जरुरत है प्रैक्टिस स्कूल से परे जाकर सोचने की। 75 से 80 फीसदी जाएँ, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन जो 20 फीसदी रुक रहे हैं, उनका झुकाव इस प्रकार के रचनात्मक कार्यों पर होना चाहिए। और जहाँ तक मुझे लगता है, एक बिट्सियन होने के नाते आपकी जॉब तो लग ही जायेगी। जरुरत हैं जॉब से ऊपर उठकर सोचने की। इस प्रकार के कार्यों के लिए फैकल्टी तथा विद्यार्थियों को सामान रूप से उत्साहित रहना पड़ेगा। हमें लगता है व्यक्तिगत स्तर पर हमें विद्यार्थियों को इस प्रकार के प्रोजेक्ट के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

ऐसे ना जाने कितने विचार सामने आते हैं और जी करता है कि आप लोगों के साथ साझा करूँ लेकिन मेरे पद पर जिम्मेदारियों के साथ-साथ कुछ मज़बूरियाँ भी जुड़ी हुई हैं। लेकिन फिर भी उम्मीद है कि ऐसे ही किसी मंच पर आपके साथ विचार साझा करने के अवसर भविष्य में और भी मिलेंगे।

नोट- उपरोक्त लेख प्रो. बिजेंद्र नाथ जैन के साथ हुए साक्षात्कार का अंश हैं। सम्पूर्ण लेख वाणी संपादकीय समूह द्वारा अनूदित रचना हैं।

वो कौन चल पड़ा

-रोहित कुमार

वो कौन चल पड़ा समर में बिना तीर कमान,
लिए मयूर पंख हाथ में, लिए कंठ वेद ज्ञान,
वो शांत लहरों का माँझी क्यों बढ़ चला भँवर को,
वो चमन का मुसाफिर क्यूँ अग्रसर है वन को,
क्या भ्रम है उसे अपने अहम जड़े ज्ञान में,
ये ज्ञात नही उसको, सब सरल नही संसार में।

जो धूप कभी उसे अलसाई सी लगती थी,
और बारिश ईश की परछाई सी लगती थी,
चाँद तारे रजनी के श्रृंगार प्रतीत होते थे,
और खगों की बोली शहनाई से होते थे,
वो मेहंदी युवतियों के सौन्दर्य निखारा करती है,
प्रेम उसे राधा-कृष्ण की ही याद दिलाया करती है।

और ये भ्रम का धुंध अब छटने लगा,
सभी चेहरों का नकाब जैसे हटने लगा,
शाश्वत, अद्भुत, निखिल प्रभुत्व का,
नशा मानो फटने लगा।

वो दिनमणि की किरणें ताप बढाती जाती है,
और फिर छोड़ आकाश को जलमग्न हो जाती है,
वो बारिश जब आक्रोश दिखाती है,
मानो इक प्रलय ही मच जाती है,
वो निशा का कजल भी गहराता सा जाता है,
चाँद घटते घटते इक रोज छुप जाता है,
कागों की आवाज वेदना दे जाती है,
मनमोहक मयूर भी भक्षक बन जाती है,
वो मेहंदी का सुर्ख रंग जल्द पड़ा फीका,
और फिर कुछ का दूषित हृदय भी दिखा,
वो प्रेम का रिश्ता आँसुओं से लगता है,
वो मिथ्या देशप्रेम शोणितपथ से गुजरता है।

वो हैरत है ये देखकर, और थोड़ा सहमा भी,
वे हाथ काँपती लिखने से, और स्याह भी फीकी,
वो था मुझ सा तो मैंने राह दिखाया,
थोड़ा संतावित किया, फिर निहित रहस्य बतलाया,
वो आज भी किसी डिब्बे मे बैठा सिसक रहा होगा,
मैं हवा मे हाथ हिला कर लौट आया।

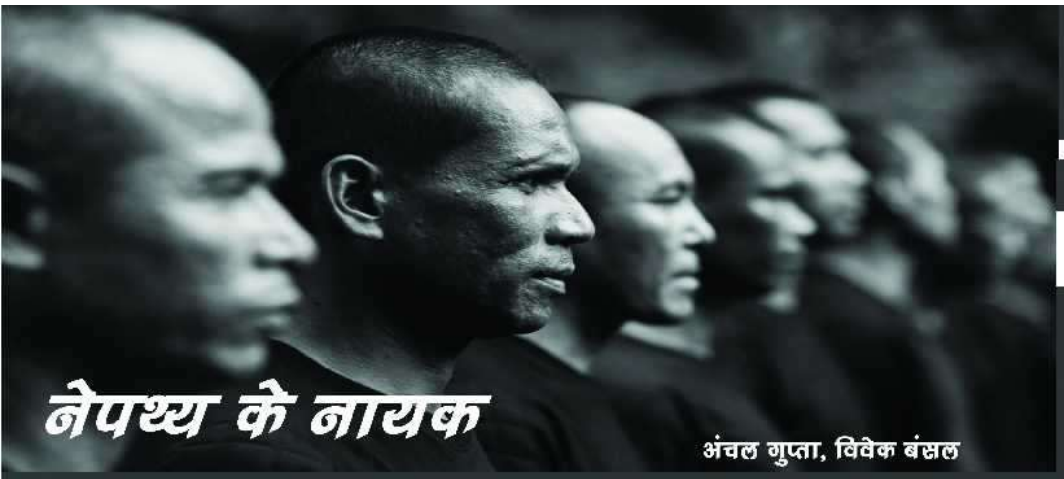

नेपथ्य के नायक

अंचल गुप्ता, विवेक बंसल

मान लीजिए आप बिट्स की किसी प्रयोगशाला में आप घुसे और आपको अपने किसी प्रोजेक्ट में कोई उपकरण इस्तेमाल करना है, किसी रसायन की आवश्यकता है, तारकोल गर्म करना है या अपना कोर्स ही रजिस्टर करवाना है तो उस समय आपकी नजरें सबसे पहले किसे ढूंढती हैं? कौन बिना नाक-मुँह फुलाए आपकी सहायता के लिए उपस्थित रहता है? जी हाँ, आप सही सोच रहे हैं, हम बात कर रहे हैं बिट्स के नॉन-टीचिंग स्टाफ की। किसी भी संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए नॉन-टीचिंग स्टाफ उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि टीचिंग स्टाफ। ऐसे ही कुछ नॉन-टीचिंग स्टाफ से आपका परिचय कराने के लिए वाणी टीम की एक पहल:-

रमेश चन्द्रदास (the 'lathe' man)

बिट्स की वर्कशॉप में अपने कुछ कथनों 'सीधा खड़ा रहो', और 'क्या कर रहा है' से प्रसिद्ध रमेश जी ने सन् 1988 में एक नौसिखिये के रूप में वर्कशॉप में कार्य करना प्रारम्भ किया। सन् 1993 में उन्हें HNG में काम करने का मौका मिला। परंतु वे सन् 1996 में वापस बिट्स आए और तब से आज तक वर्कशॉप में कार्यरत हैं। रमेश जी उड़ीसा के रहने वाले हैं और बाकी वर्कशॉप का अधिकतर नॉन-टीचिंग स्टाफ पिलानी के आसपास के क्षेत्र से है जिसके कारण रमेश जी को उन लोगों के साथ तालमेल बैठाने में काफी परेशानी उठानी पड़ती है। रमेश कहते हैं कि वे क्षेत्रवादिता में विश्वास नहीं करते परंतु शायद उनके साथ काम करने वाले लोग क्षेत्रवादिता को बहुत तूल देते हैं। रमेश जी की पीड़ा है कि वर्कशॉप में कार्यरत दूसरे लोग उनसे बात करने में संकोच करते हैं और उन्हें अपने से अलग समझते हैं। रमेश जी ने कई बार बाकी लोगों के साथ घुलने-मिलने की कोशिश की परंतु वे असफल रहे। रमेश जी बिट्स प्रशासन द्वारा दिये गए एक क्वार्टर में अकेले रहते हैं। रमेश कहते हैं कि पिछली पीढ़ी के व्यवहार में नकारात्मक सोच अधिक थी परंतु शिक्षा के बढ़ते महत्व के कारण संस्थान में उदार-चित्त वाले लोगों की बढ़ोत्तरी हुई है। सिस्टम में भी काफी बदलाव आया है- अब सीनियर छात्र (एम.ई. छात्र)-जूनियर छात्रों को सिखाते हैं। रमेश वर्कशॉप में घटी कुछ यादगार घटनाओं का जिक्र भी करते हैं जैसे कि एक बार जांच-परख की कमी के चलते लेथ का टूल ढीला रह गया था जिसकी वजह से उस टूल का एक पैना टुकड़ा मशीन चालू करते ही गोली की तरह उनकी गर्दन को छूता हुआ निकला था। एक बार लेथ में उपयोग होने वाले चक्के में एयरगैप रहने के चलते चक्का हवा में काफी ऊंचाई तक उछलने के बाद मानो उनके सर पर गिर ही गया था, यदि किसी का ध्यान नहीं जाता। ऐसी ही कुछ खट्टी-मीठी यादों को सँजोये रमेश जी आगे भी बिट्स को अपनी सेवा प्रदान करने का संकल्प लेते हैं।

सुरेश कुमार सैनी (the demanded saini ji)

बिट्स के सिविल डिपार्टमेंट की प्रयोगशाला में सन् 1993 से कार्यरत सुरेश व चेहरा हैं जिनके कार्य को शायद पूरा डिपार्टमेंट सराहता है। सन् 1997 में उन्हें प्रमोशन मिला। उन्होंने अपने बिट्सियन कार्यकाल में कई बदलाव देखे। सिविल की सभी प्रयोगशालाओं के नवीनीकरण में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। सुरेश जी अपने अनुभवों को वाणी टीम से साझा करते हुए बताते हैं कि बिट्स में सबसे अच्छी बात बिट्स के बच्चों का व्यवहार है, जिन्हें सिखाते-सिखाते सुरेश को भी छात्रों से बहुत कुछ सीखने को मिला। उनके अनुसार यहाँ के छात्र बहुत ही परिश्रमी और बुद्धिमान हैं। अपने सहयोगी स्टाफ के साथ हमेशा ही अच्छा तालमेल बैठाने में भी वे सफल रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि सिविल डिपार्टमेंट की सभी प्रयोगशालाओं के लिए बिट्स ने सिर्फ दो ही स्थायीरूप से कार्यरत प्रयोगशाला सहायककर्ता नियुक्त किए गए हैं जिसके कारण उन पर बहुत ज्यादा कार्यभार है। वे अपने परिवार के साथ अपने निजी घर में खुशहाल जीवन व्यतीत करते हैं।

हरपाल सिंह (the registration guy)

पिछले वर्ष 'बेस्ट परफ़ॉर्मर ऑफ द इयर इन नॉन-टीचिंग स्टाफ' से सम्मानित हरपाल सिंह जी बिट्स की वह शख्सियत हैं, जिनके बिना शायद हम सबका कोर्स रजिस्ट्रेशन ही ना हो पाए। सिर्फ कुछ छात्रों की मदद से पूरे कैम्पस में कोर्स रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया संभालने वाले हरपाल जी बताते हैं कि उन्होंने अपना बिट्स का सफर आज से 15 वर्ष पूर्व सन् 2000 में प्रारम्भ किया। आज की भर्ती प्रक्रिया के मुक़ाबले उस समय किसी प्रोफेसर या अन्य किसी स्टाफ के अनुरोध पर ट्रेनिंग के लिए भर्ती किया जाता था और कार्य अच्छा करने पर स्थायी रूप से रख लिया जाता था। परंतु बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते अब इंटरव्यू के बिना तो कोई काम ही नहीं मिलता। हरपाल जी ने अपने कौशल को कभी भी सीमित नहीं रहने दिया अपितु बदलते हुए इस तकनीकी दौर में स्वयं को हमेशा ही सबसे आगे रखा। अपने इसी स्वभाव के कारण आज वे ई.आर.पी. का पूरा कार्यभार संभाल रहे हैं। वे अकेडमिक रजिस्ट्रेशन एंड काउंसलिंग डिवीजन(ए.आर.सी.डी.) की बदलती कार्यप्रणाली के साक्षी भी हैं। उन्होंने बताया कि पहले किस तरह टीचिंग स्टाफ ए.आर.सी.डी. की सभी गतिविधियों में शामिल थे, परंतु अब टीचिंग स्टाफ का मुख्य कार्य छात्रों को शिक्षा प्रदान करने तक ही सीमित रह गया है। हरपाल जी का मानना है कि बिट्स में उन्हें उनके परिश्रम के अनुरूप वेतन नहीं मिलता। हरपाल जी को बिट्स कैम्पस के छात्र-छात्राओं का व्यवहार काफी अच्छा लगता है हरपाल बताते हैं कि कुछ छात्र बहुत गैर जिम्मेदाराना रवैया भी रखते हैं। ए.आर.सी. डिवीजन की उन पर निर्भरता का आलम यह है कि रजिस्ट्रेशन का कार्यभार उन्हें सौंपकर पूरा डिवीजन चैन की नींद सो सकता है।

कैसे समझाऊँ

मेरे जीवन की गर्मी में तो सावन की ठंडक बनकर आई थी,
मेरे मन को पुष्प-वाटिका सी झलक उसने दिखलाई थी।
नयनों में उसके नील-अंबर-झील समाई थी,
मुझे रब का एहसास हुआ जब वो मुस्करायी थी।।
कैसे समझाऊँ इस मन को उसका मेरा कोई मेल नहीं,
इतनी चाहत के बावजूद भी यह दिल उसके करीब नहीं ।
मयूर-नृत्य जैसे अद्भुत उसका इठलाना था,
पीत-किरण में चमकता सौंदर्य उसका, सागर का खजाना था।।
स्पर्श से उसके उत्पन्न छाया-चित्र क्या सुहाने थे,
अधर उसके सुरों की सुरा जैसे मतवाले थे।
दिल खोल दूं तो दुनिया कहे कि यह रोता है,
कैसे समझाऊँ उन्हें की आज भी इस दिल में कुछ-कुछ होता है ।।
उसका आना मेरे लिए जैसे बसंत था,
साथ उसका शरद ऋतु समान रंगीन था।
स्वर में उसके ऐसी कोमलता छाई थी,
लगता था जैसे फूलों में कांति उसी से आई है।।
कैसे समझाऊँ इन सबको की मैं कुछ क्यूँ नहीं कहता हूँ,
कि दिल में मेरे उसे पाने की नहीं उसे चाहने की चाहत रखता हूँ।
जब वो कभी एकटक बैठे कुछ सोचा करती थी,
लगता था जैसे यह कुदरत प्यारी उसे ही देखा करती थी।।
उसका मुझे बुलाना मेरे हर गम की दवाई थी,
उसका मुझे डांटना हारकर जीतने वाली लड़ाई थी।
उसे खोने से शायद मैं डरता हूँ,
कैसे समझाऊँ बाँवरे मन को कि उसी के लिए उससे दूर रहता हूँ।।
जब वो मुझे छोड़कर जाती है,
सर्दी की पूनम रात सी खामोशी छा जाती है।
बात करने में उससे मेरी जिह्वा सकुचाती है,
उसके सामने आने पर मन में नईं कलियाँ खिल जाती हैं।
कैसे समझाऊँ खुद को कि मेरे बिना ही वो खुश है,
साथ मिला है उसका, मेरे लिए यही बहुत है।।

-पुलकित सिंह टक

रात

तालाब के गीले कोनों पर
ज़िन्दगी की जेबों में
सिमट कर बैठे हैं
गुलदस्ते
अपने घर मिट्टी में डुबोए
इस इंतज़ार में कि
अनिर्वचनीय गंध वाली
अँधेरे की एक लट उन्हें प्यार
कर जाएगी
बयार सा ठंडा दामन
सहला जाएगा उन्हें
हँसी की सलवटों से लदी
नाक सा नन्हा चाँद
नहला देगा चाँदनी से
उनकी खट्टी उँगलियों को

वो रात है स्वयं,
उसके हाथों से बने सीप से आवरण में सूरज
औंधे मुँह सोया है
सधे हुए नंगे कदमों से
सूखे पत्तों से लदी राह पर
वो रखती है ओस के मोती
सवेरे की दूब पर,
बढ़ती है पश्चिम की ओर
छिड़कते हुए
अल्हड़ मुस्कान का प्रभात

वो चलती है पानी पर यों
जैसे तैरते हैं बादल
पर्वत श्रृंखला के सहारे-सहारे

-आशीष बिहानी

खटखटाहटें

- यशादित्य व्यास

बात पिछले सेमेस्टर की है| कॉम्प्री खत्म होने को थे| विंग में ज़्यादातर लोगों के पेपर 2-3 दिन पहले ही खत्म हो गये थे| मेरे अलावा विंग में बस दो और लोग बचे थे- कबीर और शांतनु| कबीर का आखिरी पेपर मेरे साथ ही था| और शांतनु, वो उन लोगों में से था जिन्हें हॉस्टल ज़्यादा अच्छा लगता था| वो तब तक घर नहीं जाता जब तक तन्हाई और सीमित भोजन विकल्प उसे मजबूर न कर देते

उस समय तकरीबन रात के 10 बजे होंगे अगले दिन आखिरी कॉम्प्री था| कबीर घोटने हेतु लाइब्रेरी गया था और शांतनु सम्भवत: अपने कमरे में 'चढ़ा' कर गहरी नींद में था| दिनभर घोटने के बाद अब मेरा सर हल्का-हल्का दुखने लगा था| हाँलांकि एग्ज़ाम दोपहर में था, मैंने जल्दी सोना ही उचित समझा| लेट कर गाने सुनते हुए कब नींद आ गई, पता ही ना पड़ा|

"लघुशंका मुक्ति से बड़ी कोई मुक्ति नहीं! आह!" सोचते हुए मैं हाथ धोने लगा| वापस कमरे की ओर जाते हुए मुझे एहसास हुआ कि होस्टल वाकई में कितना खाली हो गया था ज़्यादातर कमरे काले रिक्त स्थान हो कर रह गये थे| वो सारी हलचल, चहल-पहल, शोर-गुल .... कमी बहुत खल रही थी| और साथ ही एक अजीब सा डर, इस खालीपन का डर, भी महसूस हो रहा था| तभी मुझे क्यू.टी. के दूसरे छोर से कोई आता दिखाई दिया| "चलो कोई तो है मेरे अलावा भी" सोचते हुए मैं अपने कमरे की ओर बढ़ता रहा| वह भी मेरी तरफ ही आ रहा था| जैसे-जैसे वो साया मेरे पास आता गया, मुझे उसमें कुछ अजीब लगने लगा| लग तो नॉर्मल ही रहा था| हो सकता है मेरा डर मुझपर हावी हो गया था| खैर जो भी था, मैंने कदम तेज़ कर लिए और जल्दी से कमरे में घुसने लगा| कमरे में घुसते हुए मुझे एक धक्का महसूस हुआ और मैं बिस्तर पर गिर पड़ा|

जब मेरी आँख खुली तो पाया तो मैंने खुद को एक परिचित सी स्थिति में पाया| जकड़ा हुआ शरीर, पैरों पर से आती चकाचौंध कर देने वाली रोशनी, अर्ध निद्रा की अवस्था....| इतनी बार होने के बाद स्लीप पैरालिसिस डर से ज़्यादा चिढ़ उत्पन्न करने लगा था मैंने अपनी आँखों पर ज़ोर लगाया और .....सपना टूट गया|

"भगवान का लाख-लाख शुक्र.... वह साया, धक्का, बेहोशी..... सब एक स्वप्न मात्र था|" सोचते हुए मैं सर उठाकर दरवाज़े की ओर देखने लग गया| कुछ नहीं दिखा.... और दिखता भी क्यों? यह तो सपना ही था|

मेरा सिर फ़िर तकिये की ओर जाने लगा| तभी, खट-खट... दरवाज़े पर खटखटाने की बहुत धीमी-सी आवाज़ आती है| क्षणभर के लिये मेरी श्वास थम गई| पर मैं चुपचाप लेटा रहा, यह सोचते हुए कि कोई दोस्त होगा, लाइट बंद देखकर चला जायेगा| और ऐसा ही हुआ| आवाज़ बंद हो गई|

अपने बचेखुचे सारे डर को निकालने के लिये मैंने दरवाज़ा खोल कर चेक किया| कोई नहीं... पूरा गलियारा खाली था|

"शायद पीछे वाली विंग में किसी ने खटखटाया होगा" सोचते हुए मैं बिस्तर पर बैठ गया| तभी वही खट-खट की आवाज़ मेरे बैकी के कमरे से आती है| और वो रुकती ही नहीं| तभी मुझे एक भयानक एहसास होता है – "मेरा बैकी तो घर चला गया"| अब तो मेरे डर की कोई सीमा ना थी| काटो तो खून नहीं सी स्थिती हो गयी थी|

मैं रज़ाई में घुस कर कबीर को कॉल करने लगा| और ताले लगे दरवाज़े पर वो आवाज़ तो रुक ही नहीं रही थी| अब मैं 'बहुत' डर गया था| इतना कि अब मैं कॉल करने की बजाय मैसेज करने लगा क्योंकि बोलकर सन्नाटा तोड़ने की हिम्मत मुझमें नहीं थी| तकरीबन 10 मिनट तक उस सन्नाटे से भरे वातावरण में बैठा रहा| वह मुझे मेरी ज़िंदगी के सबसे लम्बे 10 मिनट प्रतीत हो रहे थे|

"ओए यश! दरवाज़ा खोल बे! इतने मैसेज क्यों किये?" बाहर से कबीर की आवाज़ आती है|

मैंने झट से उठकर दरवाज़ा खोला और उसे अंदर बुलाया और फिर अपने डर को थोड़ा छुपाते हुए उसे पूरी घटना सुना दी|

सब सुनकर उसने एक अजीब-सी मुस्कान दी और बोला "बस इतनी सी बात! चल एक राउंड मार कर आते हैं| हम भी तो देखें कि मामला क्या है"

फ़िर उसने धक्के-से मुझे पूरे हॉस्टल का चक्कर कटवाया|

"देखा! कुछ भी तो नहीं है! तेरे कान बज रहे होंगे| मेरे साथ भी होता है कई बार| अब सो जा और ज़रूरत पड़े तो जगा दियो" कहकर वह मुझे रूम पर छोड़कर चला गया|

डर तो लग रहा था पर नींद अब हावी होने लगी थी| मैं एक मिनट के लिये लेटा होंगा कि फ़िर से कबीर की आवाज़ आती है

"अबे यश! गेट खोल"

"बोल" कहते हुए मैं दरवाज़े की ओर बढ़ने लगा|

"क्या बोल? तू बोल, इतने सारे मैसेज क्यों किए?"

इश्क के तीन मुकाम

प्रतीक 'कटार' डैंग

हमसफर ढूँढने निकला है राही? तो सुन ले मेरी कहानी
कुदरत का नियम तो नहीं है, मगर कहावत है यह पुरानी।
मंज़िल-ए-मुहब्बत मिले उससे पहले, आऐंगे तीन मुकाम
इश्क का तजुर्बा होगा तुझे तीन बार, चाहे जैसा हो अंजाम।

एक बार दिलकशी होगी उससे अवश्य, जो यार है तेरा सबसे खास
दूर हो जाओ फिर सदा के लिए, या शायद आ जाओ और भी पास।
होश उडा दे जिसकी सारी बातें, ऐसे आशिक से भी होगी पहचान
लौटेगा जब जमीन पर, जान लेगा कि कोई नहीं मुकम्मल इंसान।
हर शौक और आदत हो जिससे मिलती, उससे भी होगा मेल तगडा
एहसास होगा फिर आखिरकार, जुडवाओं में भी होता है झगड़ा।

टूटेगा दिल हर मंजर पर, लेकिन यह ठोकरें भी हैं जरूरी
निकलना फिर अपने सफर पे बेखौफ, तेरी शिक्षा हो गयी पूरी।

क्या लिखूँ ?

-आशुतोष कुमार पांडे

इस वक्त मेरे लिए सबसे बड़ा सवाल यह है कि किस बारे में लिखूँ| विषय कई सारे हैं और सभी अपने आप में महत्वपूर्ण हैं| काफी चीजें बदल रहीं हैं| सच बताऊँ तो मुझे खुद अभी इस बात का अंदाजा नहीं है कि नीचे की पंक्तियों में मैं किस ओर जाना चाहता हूँ तो किसी प्रस्तावना का तो प्रश्न ही नहीं खड़ा होता| तो खुद को आज़ादी देते हैं| वरना आज़ादी मिलती कहाँ है आजकल| यूँ तो आज़ादी मिले हुए कुछ 67 साल हो चुके हैं लेकिन 'आज़ादी' शब्द की भी अलग से विवेचना होनी चाहिए| दिन के शोर में तो आज हम सभी इतने खोए रहते हैं कि कई बार खुद से भी मुलाकात नहीं हो पाती|

लेकिन काफी अधिक आज़ादी में कभी-कभी भटकाव की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है| वैसे भटकने का भी अपना मजा है| लेकिन भटकने की बजाय वापिस उसी प्रश्न पर आते हैं| क्या लिखूँ? अगर पिछले 2-3 सालों के बदलते हुए भारत के बारे में लिखना चाहूँ तो भी बहुत सारे मुद्दे हैं| एक साधारण पृष्ठभूमि से निकलकर हिंदुस्तान के जननायक के रूप में उभरने वाले नरेंद्र मोदी के बारे में लिखूँ या फिर दिल्ली की राजनीति में हुए अभूतपूर्व परिवर्तनों के बारे में लिखूँ|

क्रिकेट के मैदान पर इंसान से 'भगवान' बनने वाले 'भारत रत्न' सचिन तेंदुलकर के अद्भुत संन्यास के बारे में लिखूँ या फिर अभी चल रहे 2015 विश्व कप के रोमांच के बारे में लिखूँ| लालू और जयललिता के भ्रष्टाचार के बारे में लिखूँ, राहुल गाँधी की नादानी के चर्चों के बारे में लिखूँ या फिर माँझी की बेवफाई के बारे में लिखूँ|

भारत की मज़बूती के साथ आगे बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था और 8 प्रतिशत विकास दर के लक्ष्य के बारे में लिखूँ या फिर दिल्ली में 'भारत की बेटी' के सामूहिक बलात्कार कांड के बाद पूरे देश में 'आधी आबादी' को उसका हक दिलाने के लिए गूँजती और संघर्ष करती हुई एक नए उभरते हुए भारत की आवाज के बारे में लिखूँ या फिर उसी

की मंगल पर कॉलोनी बसाने की अति-महत्वाकाँक्षी योजना के बारे में लिखूँ| मुज़फ्फरनगर में पिछले साल हुए हिंदू-मुस्लिम दंगों और उसके बाद कैंप में जीवन गुजारने को मजबूर लोगों के बारे में लिखूँ या फिर 'आई.एस.आई.एस.' के जिहादी आतंक के बारे में लिखूँ|

पिछले 2-3 सालों में बॉलीवुड के '200 करोड़ क्लब' में आसानी से जगह बनाती कई फिल्मों के बारे में लिखूँ या फिर आज भी समाज के हाशिए पर रोटी, कपड़ा और मकान के लिए संघर्ष करते हुए करोड़ों लोगों के बारे में लिखूँ| भारत के कैलाश सत्यार्थी और पाकिस्तान की मलाला को मिले 'नोबेल शांति पुरस्कार' के बारे में लिखूँ या रोज भारत-पाक सीमा पर बढ़ती हुई घुसपैठ और सरहद के दोनों ओर जवानों के खून से रंगे हुए अखबार के पन्नों के बारे में लिखूँ| सुबह-सुबह भारी बस्ता लेकर स्कूल की तरफ बढ़ते हुए नन्हे कदमों और उनकी आँखों में सुनहरे भविष्य के सपनों के बारे में लिखूँ या फिर ढाबे पर बर्तन माँजते हुए उस मासूम से बच्चे की बेबस आँखों के बारे में लिखूँ, जिसके हाथों में इस समय पढ़ने के लिए किताबें और खेलने के लिए खिलौने होने चाहिए|

अपने पापा से 'चॉकलेट' की जिद करते हुई उस प्यारी सी बच्ची के बारे में लिखूँ या फिर रेलवे स्टेशन पर भीख माँगते हुए उस बच्चे के बारे में लिखूँ| यहाँ थोड़ा रूकना होगा| ये घनघोर गरीबी उन्हें जन्म के साथ तोहफे में क्यों मिलती है| इसे किसकी नाकामी कही जाए? 'सर्व शिक्षा अभियान' पर अरबों रूपये खर्च करने वाली सरकार की नाकामी या फिर 'पूँजीवाद' का अपरिहार्य साइड-इफेक्ट| खैर इस 'सर्व शिक्षा अभियान' के तहत चलने वाले प्राथमिक विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा का स्तर अपने आप में बहस का मुद्दा है| हम उस ओर नहीं जाते हैं और वापिस अपने यक्ष-प्रश्न पर आते हैं| क्या लिखूँ?

अजी यकीन मानिए, और भी बहुत सारी बातें हैं जिनके बारे में लिखा जा सकता है| लेकिन मैं तो फिलहाल इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि मैं किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया| हॉस्टल में किसी का अलार्म बज रहा है जिससे पता लगता है कि सुबह होने वाली है| वैसे यह नए दिन का सूरज क्या संदेश लेकर आएगा, किसी को नहीं पता| बस उम्मीद की जा सकती है कि हम सबके जीवन में ढेर सारी खुशियाँ आएँ| सरहद पर और खून ना बहे| मुज़फ्फरनगर जैसे दंगे दोबारा ना हों| दिल्ली या पेशावर जैसी घटनाएँ मानवता को दोबारा शर्म से झुकने पर मजबूर ना करें| विकास दर 8 फीसदी पहुँचे या ना पहुँचे, लेकिन ढाबे पर काम करने वाले उस मासूम की अगली सुबह स्कूल में हो और उसके चेहरे पर भी मुस्कुराहट हो और आँखों में सपने|

3pm BITS Pilani

Like Father, Like Son

हिंदी और हम

हिंदी, हमारी राजभाषा, सभी भारतीयों के दिलों में एक अलग ही प्रकार की खनक पैदा करती है, खासकर विदेशों में बसे भारतीयों के दिल में| और ऐसी भाषा जिसके तार दिल से जुड़ें होते हैं, उनका भविष्य तो निश्चित रूप से उज्ज्वल माना जाता है| लेकिन फिर भी ऐसे कौन से कारण आ गए कि प्रतिवर्ष सरकार को हिंदी को बढ़ावा देने के लिए नए नए आयोजनों की जरुरत पड़ रही है| ऐसी क्या परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि जिस भाषा ने अंग्रेजों के राज में अपना अस्तित्व बचाए रखा, आज उसे स्वराज में ही अपने अस्तित्व के लिए जूझना पड़ रहा है| इन सब कारणों को जानने से पहले आइए एक नजर डालते हैं हिंदी की उत्पत्ति से जुड़े कुछ रोचक पहलुओं के बारे में-

हिंदी की उत्पत्ति संस्कृत के प्राकृत तथा अपभ्रंश से हुई है| यह भाषा तुर्की, फारसी, अरबी, द्रविड़ आदि भाषाओं का एक अनूठा संगम है| विद्वानों के मत के अनुसार हिंदी एक विचारात्मक भाषा है| इस भाषा में कोई भी विचार बहुत ही सरल तथा सभ्य शब्दों के प्रयोग से प्रकट कर सकते हैं| 18 करोड़ से ज्यादा लोग भारत में हिंदी को अपनी मातृभाषा के रूप में अपनाते हैं| कई राज्यों की क्षेत्रीय भाषाओं की उत्पत्ति भी हिंदी की ही देन मानी जाती है| विदेशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, न्यूजीलैंड, जर्मनी जैसे देशों में भी हिंदी भाषियों की जनसंख्या अच्छी खासी है| सातवीं शताब्दी में प्राकृत तथा अपभ्रंश से उत्पन्न हुई हिंदी दसवीं शताब्दी तक काफी स्थिर हो गई थी| इस हिसाब से हिंदी कुल डेढ़ हजार वर्ष पुरानी भाषा है| समय के साथ भारत पर हुए विदेशी आक्रांताओं के आक्रमणों में हिंदी ने अपने अंदर कई विदेशी भाषाओं को समाहित कर लिया हैं|

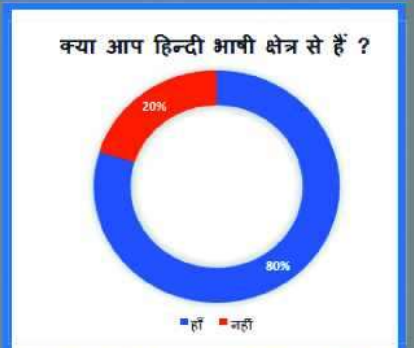

सर्वेक्षण में शामिल कुल 80 प्रतिशत लोग हिंदी भाषी क्षेत्रों से थे| वहीं 20 प्रतिशत लोग ऐसे क्षेत्रों से थे जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी|

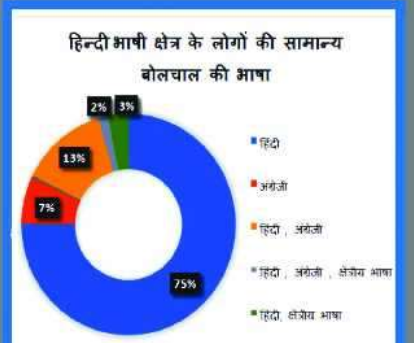

अब इन 80 प्रतिशत लोगों में से मात्र 75 प्रतिशत लोग आपस में हिंदी में बात करते है|

आज अपने संस्थान में जहाँ की आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है, हिंदी की स्थिति जानने हेतु वार्णी टीम ने एक सर्वेक्षण किया इस सर्वेक्षण में कई चौंकाने वाले नतीजे सामने आए तो कुछ सांत्वना देने वाले तथ्य भी उभरकर सामने आए|

अब जब बात हुई कि ऐसे संस्थान में जहाँ आधिकारिक भाषा ही अंग्रेजी है, तो फिर ऐसा कौन सा माध्यम है जो उन्हें हिंदी से जोड़े रखता है| तो इसमें हिंदी प्रेस क्लब की एक बहुत बड़ी भूमिका सामने आई| 40 प्रतिशत लोगों ने स्वीकार किया कि मात्र 'प्रवाह', हिंदी प्रेस क्लब की मासिक पत्रिका ही एक ऐसा माध्यम है जो उन्हें हिंदी से जोड़े रखता है 35 प्रतिशत लोगों ने अन्य माध्यम को अपना ज़रिया बताया|

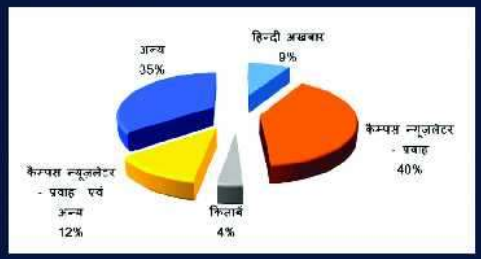

वहीं मात्र 9 प्रतिशत लोग ही समाचार पत्र के माध्यम से जुड़े हुए हैं| 12 प्रतिशत लोग प्रवाह के साथ अन्य स्रोतों से भी हिंदी के साथ जुड़े हैं| हालाँकि इस अध्ययन में एक निराशाजनक तस्वीर यह सामने आई कि मात्र 4 प्रतिशत लोग हिंदी पुस्तकों से जुड़े हैं यह आँकड़े निश्चित रूप से किसी भी भाषा के साहित्यिक विकास के भविष्य की भयावह तस्वीर पेश कर रहे हैं|

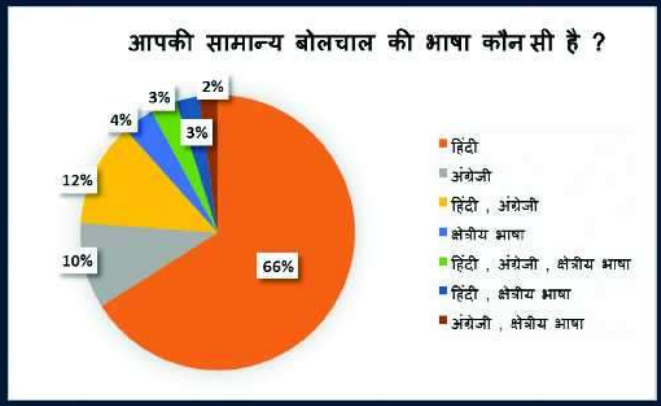

सर्वेक्षण मे शामिल सभी लोगो में 10 प्रतिशत लोग शुद्ध अंग्रेजी का उपयोग करते हैं| वहीं 12 प्रतिशत लोग हिंदी अंग्रेजी दोनों में बात करते हैं| इस बात पर खासा ध्यान देना चाहिए कि मात्र 4 प्रतिशत लोग ही आपस में क्षेत्रीय भाषा में बात करते हैं| बाकी बचे हुए लोग पंचमेल खिचड़ी की भांति अलग अलग भाषाओं में बात करते हैं|

क्या अंग्रेजी आपके क्लब/डिपार्टमेंट की सामान्य बोलचाल की भाषा है ?

28 फीसदी लोगों ने इस तथ्य को स्वीकारा कि उनके क्लब/डिपार्टमेंट में अंग्रेजी आधिकारिक भाषा है|

हाँ	नहीं
28%	72%

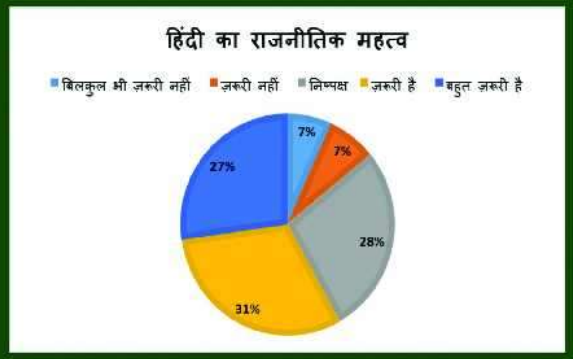

जब हमने सर्वेक्षण में सम्मिलित लोगों से हिंदी के राजनीतिक महत्व के बारे में पूछा तो काफी संतुलित विचार सामने आए|

अधिकतर लोगों ने हिंदी को सामाजिक तथा राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जरुरी समझा परन्तु इसे अत्यधिक महत्वता देने से नकारा भी|

अब जब बिट्स में क्लब तथा डिपार्टमेंट की संस्कृति इतनी प्रचलित है, तो निश्चित रूप से किसी भी भाषा के प्रचलन में इनका बहुत बड़ा योगदान है|

28 फीसदी लोगों ने इस तथ्य को स्वीकारा कि उनके क्लब/डिपार्टमेंट में अंग्रेजी आधिकारिक भाषा है|

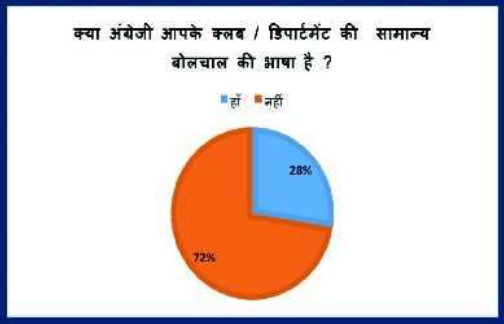

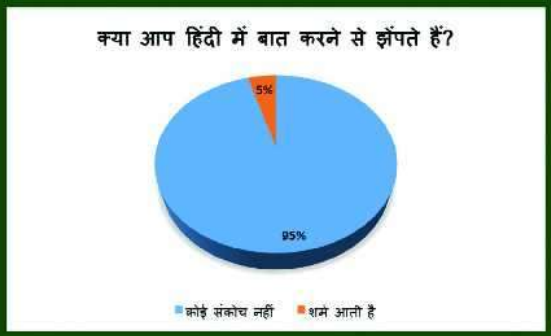

हालाँकि एक प्रश्न "क्या आपको हिंदी में बात करने में झेंप महसूस होती है?" से निश्चित रूप से कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आए|

मात्र 5 प्रतिशत लोग ने इस बात को स्वीकारा कि वे वास्तव में हिंदी में बात करने में शर्माते हैं| इस अध्ययन के अनुसार हिंदी ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा अभी नहीं खोई है|

ऐ बिट्स तेरे ख्याल में

उलझा उलझा रहता हूँ अक्सर एक सवाल में.
क्यूं मेरी कलम खुद-बखुद चल पड़ती है..
ए बिट्स तेरे खयाल में..
दोस्तो का साथ छूटा , कहाँ फंस गया जिंदगी के जंजाल में..
क्यूं चल पड़ती है खुद ये कलम..ए दोस्त तेरे खयाल में...
हर पल निकल जाता है ,उन सुनहरी यादो में.
कूड़ियां जब दिखती थी हमे ,लाइब्रेरी की किताबो में
टेस्ट से पहले नाइट-आउट मद्धरना .पिलानी की सर्दी भरे उस हाल में.
फिर भी मस्त वाट लगती थी अपनी.ओपन बुक के हर सवाल में.
क्यूं चल पडती है खुद ये कलग..ए बिट्स तेरे खयाल में...
स्पोर्ट्समीट ,म्यूज़िक नाइट्स..मस्तियो में खो जाती थी.
दिल करता था चाँद छूने की, पर ग्रेड्स हकीकत बताती थी.
कभी फोडना दिवाली के पटके कनॉट पर ,
कभी कॅपस को रंगना होली के उस गुलाल में.
खुद ही चल पड़ती है मेरी कलम..
ए दोस्त तेरे एक खयाल में..
जमाना बीता ,साथ छूटा.
सब हो गये अलग अलग सफलता के इस बवाल में.
मेरी कलग तो वक्त चली है .ए दोस्त तेरे खयाल में
ना होंगी अब वो लडाईयां।
ना क्लास बंक कर, रेडी पे समा बन पायेगा।
बिट्स की यादो संग ये जीवन ,यूं ही कटता जायेगा
मिलेंगे कभी तो फिर ,जीयेंगे जिंदगी उसी हाल में.
फिर जोड़ेंगे वही तराने ..यही ख्वाइश इस कलम की चाल में
मेरी कलग खुद बखुद चल पडती है..
ए बिट्स तेरे खयाल में।

-देवेंद्र भंडारी

शब्द यात्राः भारतीय साहित्य की झलकियाँ

क्या हमारे देश की किसी भी विषय पर एक इकाई के रूप में कल्पना की जा सकती है? (भारत – पाक क्रिकेट मैच ना होने वाला हो तो) शायद नहीं। भारत की वास्तविकता इसकी विभिन्नता में ही निहित है। इस बात का अंदाज़ा मात्र विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले साहित्य की तुलना का लगाया जा सकता है। जब प्रान्त बदलते हैं तो किरदार बदलते हैं, वेश बदलते हैं, भाषा बदलती हैं और इन सभी चीज़ों के साथ-साथ बदलती हैं किरदारों की कहानियाँ। यही चीज़ साहित्य को अनुकूल बनाती है देश का ऐसा अध्ययन करने के लिए जो सब कुछ समेटने का एहसास दे।

सिर्फ इसी बात को ध्यान में रखकर इस सूची को आकार दिया गया है। इस सूची में जिन किताबों का नाम लिया गया है, वे अपनी भाषा की प्रतिनिधि होने का दावा कदापि नहीं करतीं, और ऐसा भी ज़रूरी नहीं कि वे सबसे ज़्यादा पढ़ी जाने वाली किताबों में से हों। इन किताबों को चुनते समय पुराने-नए साहित्य का भेदभाव भी नहीं किया गया है। एक विशेष बात यह है कि इसमें से लगभग सभी किताबों का हिन्दी व अँग्रेज़ी अनुवाद उपलब्ध है।

यह सूची किसी एक व्यक्ति की सनक मात्र का प्रमाण नहीं है। रेडिट, ट्विटर और क्वोरा पर उपलब्ध आँकड़ों के अलावा विभिन्न मातृ भाषाओं वाले लगभग 20 ऑन-कैम्पस छात्रों (और उनके अभिभावकों) की टिप्पणियों का विश्लेषण कर इस सूची को अंतिम रूप दिया गया है।

बांग्ला

पाथेर पांचाली – विभूतिभूषण बंदोपाध्याय

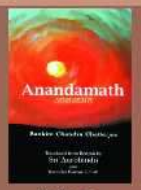

आनंद मठ – बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय

इंग्लिश

द गाइड – आर के नारायण

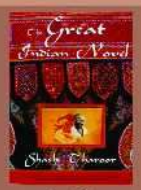

द ग्रेट इंडियन नॉवेल – शशि थरूर

हिन्दी

मेरा परिवार – महादेवी वर्मा

गोदान – मुंशी प्रेमचंद

तेलुगु

बैरिस्टर पर्वतीसम – मोक्कपती नरसिम्हा शास्त्री

कन्याशुल्कम – गुर्जड़ा अप्पाराव

पंजाबी

पिंजर – अमृता प्रीतम

चिट्टा लहू – नानक सिंह

मलयालम

खसक्किंते इतिहासम – ओ वी विजयन

पथुम्मायुड़े आडु – वैकॉम मुहम्मद बशीर

उर्दू

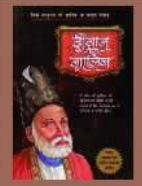

दीवान-ए-ग़ालिब – ग़ालिब

मंटो के सौ अफ़साने – सादत हसन मंटो

तमिल

पोन्नियन सेल्वन – कल्कि कृष्णमूर्ति

नन्नीर देसम – वैरामुथु

मराठी

हिन्दू जगण्याची समृद्ध अडगल – भालचन्द्र नेमाडे

व्यक्ति आणि वल्ली – पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे

कन्नड़

आवरण – एस एल भयरप्पा

कर्वालो – तेजस्वी

घटिया प्रेरक प्रसंग

निखिल सक्सेना, सुशील कुमार । वाणी 2007

आज मैंने कुछ ऐसा लिखने का सोचा कि जिसे पढ़कर कोई भी अपने आप को श्रेष्ठ लेखक या कवि से कम नहीं आँकेगा। मेरा पहला प्रश्न स्वयं से और सबसे "क्या है सर्वाधिक महत्वपूर्ण?" सृजन, पाठन या फिर रचना का मैगजीन में छपना? नहीं पता! किन्तु रचना ही नहीं होगी तो छपेगा क्या और छपेगा नही तो कोई पढ़ेगा क्या ?? खैर पढ़ने के लिए किसी को बाध्य तो नही किया जा सकता लेकिन जब कोई पढ़ेगा ही नहीं तब तक, रचना अच्छी थी या बुरी कोई कैसे कह सकता है? अर्थात् पाठक ही अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अच्छे लेखन की कला पर बहुत सी किताबें मिल जाएँगी। अक्सर अखबारों में भी इस पर फीचर या लेख देखने को मिलते हैं लेकिन घटिया लेखन पर मैंने अभी तक कोई रचना नहीं देखी, आपने भी नहीं देखी होगी। समझ नहीं आता फिर इतने घटिया लेख कैसे छप जाते हैं? बिना प्रशिक्षण के श्रेष्ठ कोटि का घटिया लेखन अपने आप में चौंकाने वाली बात है। बिट्स जैसे संस्थान में, विद्यार्थियों के हित में, ऐसा कोर्स आरंभ करना अपरिहार्य लगता है। अतः इस पत्रिका के माध्यम से 'घटिया लेखन' के रहस्य बताने का प्रयास करता हूँ ताकि गुरु धर्म के साथ न्याय कर सकूँ।

1. लिखने का मूल उद्देश्य निर्धारित कर लीजिए। सब चाहते हैं कि लोग लेखक को ज्ञानी, सर्वज्ञ और दृष्टा मानें। इसके लिए ज्ञान से लबालब वाक्यों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यह एक मानी हुई बात है कि यदि आप कठिन शब्द और लम्बे-लम्बे उलझे वाक्य नहीं लिखेंगे तो पाठक आपको हरगिज़ विद्वान नहीं मानेगा। कठिन शब्द ही गहरे अर्थों और उलझे भावों का भार सहन कर सकते हैं।

२. पाठकों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अगर आप पाठकों की चिन्ता करेंगे तो अपना चिन्तन क्या खाक करेंगे! भाषण कला का एक सूत्र होता है कि यह मानकर चलें कि सामने का मैदान खाली है। अकेले आप ही बोल रहे हैं और कोई श्रोता नहीं। अगर लाख कोशिशों के बावजूद दर्शक दिखाई दे भी जाए तो मानकर चलिए कि सभी श्रोता मूर्ख हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आप जिस मात्रा में अपने लेखन में पाठकों को अप्रासंगिक बनाते जाएँगे, उसी मात्रा में आपको सफलता मिलती जाएगी।

3. गरिष्ठ लेखन में विश्वास कीजिए और उसके लिए बड़े-बड़े लेखकों या कवियों के उन अंशों को लिख लीजिए जो आपकी समझ में न आए हों। पाठकों को भी समझ में नहीं आएँगे और वे आपको विद्वान मान लेंगे।

4. घटिया लेखन का एक और सूत्र है जो चमत्कारिक असर पैदा करता है। किन्हीं दो-तीन बातों को चुन लीजिए और बार-बार तरह-तरह से दोहराते रहिये। बार-बार पढ़कर पाठक सो जाएगा। है न चमत्कार!

5. वरिष्ठ लेखकों में एक और गुण मैंने पाया है। जो बात उन्हें कहनी होती है उसे वे अंत में लिखते हैं ताकि पाठकों की दिलचस्पी बनी रहे।

जैसा कि मैंने पहले भी लिखा कि संस्थान में घटिया लेखन का प्रशिक्षण देना संभव नहीं है, लेकिन जहाँ चाह, वहाँ राह। इच्छुक नवोदित रचनाकारों को टी.वी., लोकल अखबार और पत्रिकाएँ भी समुचित प्रोत्साहन देते हैं। अन्ततः यह पत्रिका तो आप जैसे लोगों द्वारा, आप जैसे लोगों के लिए ही बनाई जाती है। कुछ भी लिखिए और लिखते रहिए। यहाँ घटिया लेखन और लेखकों का भविष्य उज्ज्वल है।

एवमस्तु।

आशा है यह लेख बिट्स में ऐसा आंदोलन लाएगा कि भविष्य में वाणी सम्पादकीय टीम का अधिकतम समय लेख छाँटने में ही जाएगा।

क्या सोचा था और क्या है पाया

क्या सोचा था और क्या है पाया,
दिल में उम्मीदों के दीप उज्जवल थे
पर अब चारों और अँधेरा है छाया।
सपनों की नगरी की पगडंडी पर चला था मैं,
कुछ ख्वाहिशें थी दिल में
पर अब न कोई मंजिल है, न कोई उम्मीदें
क्या सोचा था और क्या है पाया।

राह में मुश्किलें सबके आती हैं, ठोकर सब खाते हैं
पर एक बार खाकर संभल जाते हैं
पर मेरे साथ नहीं हुआ है ऐसा
ठोकर ही ठोकर खाई है मैंने इस राह में
और अब नहीं बचा है संभलने का कोई मौका
क्या सोचा था और क्या है पाया।

राह में कई साथी मिलें है और कई हैं बिछड़े,
पर हमेशा साथ चलने के लिए नहीं है कोई
भीड़ में भी खुद को अकेला है पाया,
शोर में भी है खामोशियों का साया
क्या सोचा था और क्या है पाया।

चलते चलते थक गया हूँ मैं,
दूर दूर तक न है कोई उम्मीदों का चिराग।
कब तक भटकूँगा मंजिल की तलाश में,
जिसकी न है अब कोई आस
क्या सोचा था मैंने और आखिर क्या है पाया।

-ऋद्धिका सिंघल

तिलक लगाना जरुरी है

संकेत अशोक थानवी

दस हो या करोड़ों वहाँ।
महल हो या सिर्फ झाड़ वहाँ।
तंग गलियाँ हों या बड़ी सड़कें वहाँ।
सबको - अपना अधिकार पाना,
और कर्तव्य निभाना जरूरी है।
तिलक लगाना जरूरी है।

ये तो मेला है अलग-अलग चिन्हों का।
रंगमंच सजता है,
राजनीति के कलाकारों का।
उस रंगमंच का मूल्य चुकाना जरूरी है।
तिलक लगाना जरूरी है।

डरते न वो कोई गोली से।
डरते वो सिर्फ और सिर्फ,
हमारे बीच एक-दूसरे के लिए अच्छी बोली से।
इन बारूदी काली फसल उगाने वालों को,
कुछ अच्छे पाठ पढ़ाना जरूरी है।
तिलक लगाना जरुरी है।

आरक्षण को मत की तिजोरी समझने वाले हों या,
देश की तिजोरी में छेद करके,
खुद की तिजोरी भरने वाले।
उनको उखाड़ फेंकना जरूरी है।
तिलक लगाना जरूरी है।

हमारे इस महान देश को
जाती-लिंग-वर्ण से बाट-बाटकर,
छोटी तस्वीर देखने वालों को,
बड़ी तस्वीर दिखाना जरूरी है।
तिलक लगाना जरुरी है।

विद्या-विकास-नारी सुरक्षा को,
कम आँकने वाले कलाकारों को,
उनके मंच से गिराना जरूरी है।
तिलक लगाना जरूरी है।

व्यवस्था, जैसी मूरत में,
आस्था रखना जरूरी हैं।
दूषित-खंडित हो जाए कही ये,
तो साफ करके तिलक लगा कर नहीं,
पर तिलक लगा कर साफ करना जरूरी है।
ना हैं तिलक कोई ये,
कुमकुम-केसर-चंदन का।
वैसे ये तो है सिर्फ स्याही,
पर तिलक इस मूरत का।

राष्ट्र के इस पावन मंदिर में,
मूर्ति स्थापित करना जरूरी है।
मूर्ति स्थापित करना है अगर,
तो तिलक लगाना जरूरी है।

मेरी यादें

- रजत पालीवाल

"साहब हम लोग इस रास्ते से ही जाया करते थे| यहाँ तीन गाड़ियाँ हुआ करती थीं...| साहब... साहब" करते हुए मेरी आँखें खुलीं| मैंने अपने कठोर चोटग्रस्त हाथों से अपने माथे का पसीना पोंछा| मेरी नज़र सामने की पुती हुई हरी दीवार पर लटकी घड़ी पर गई| सुबह के साढ़े सात हो रहे थे| तभी मन में एक और भय ने जन्म लिया कि कहीं आज फिर आठ बजे नहीं पहुँच पाया तो मालिक फिर खरी-खोटी सुना देंगे| मैंने अपनी खूँटी पर टंगी ड्रेस को उतारा, अपना डंडा लिया और साइकिल पर बैठ निकल गया| बंगले के सामने साइकिल खड़ी की| देखा कि साहब यश को स्कूल बस में बिठा रहे थे| तभी पीछे से मेमसाहब आईं "यशू टिफ़िन तो लेता जा"| टिफ़िन... तभी मैंने अपनी किस्मत को कोसा "कहाँ मैं दूसरों को खाना खिलाने वाला व्यक्ति आज खुद को भी नहीं खिला पा रहा हूँ

"अरे तू बस यहीं खड़ा रहना, वो देख कुत्ता घर में घुसने की फ़िराक में है तू अंधा है क्या? किस बात की तंखाह लेता है तू??" "मालिक वो अपना ध्यान कहीं और था" मैंने उत्तर दिया "सही ही कहते है लोखंडे साहब तू तो सच में पागल है|"

लोखंडे साहब सुन कर मेरे पूरे शरीर में सर-सरी सी दौड़ पड़ी| "मालिक आगे से ऐसी गलती कभी नहीं होगी" मैंने मालिक को भरोसा दिलाया| मालिक बड़बड़ाते हुए अंदर चले गए| "तुम्ही कसे आहात तिवारी जी" "बस बढ़िया दिनू" मैं सोचता हूँ कि कई बार बढ़िया कह देना एक औपचारिकता मात्र ही होती है, कुछ लोग इसे आशावादिता का प्रमाण मानते है पर मैं तो सिर्फ बात पूरी करने का ज़रिया |

"तिवारी जी आज तो बड़ा चमक रहे हो तुम्ही आहात" दिनू ने सब्जियों पर पानी छिड़कते हुआ कहा| कितना फ़र्क होता है इन सब्जियों और हमारी ज़िंदगी में! ये तो फिर भी मुरझा कर खिल जाया करती है पानी की मार से, पर ज़िंदगी कभी किस्मत की मार से नहीं खिलती "बस ऊपर वाले की कृपा है"- मैंने जवाब दिया| अक्सर ऐसा होता है कि इंसान की परिस्थिति और उसकी कथनी का कोई मेल नहीं होता| बस ऐसा ही मेरा हाल था | "अरे अपना ठेला साइड में ले"| गाड़ी में बैठा एक राहगीर हॉर्न बजते हुए चिल्लाया| "दिनू आज-कल मुंबई में गाड़ियाँ ज़्यादा और इंसान कम हो गए हैं" मैंने ज़िंदगी के समान भागती हुई इन गाड़ियों को देखते हुए कहा "तिवारी जी क्या कहें ये गाड़ी वाले हमें कुछ समझते ही नहीं" तभी भीतर से आवाज़ आई "तिवारी जी दिनू से आलू, टमाटर, लौकी ले लेना आपको अच्छी परख है... आज यशू के लिए पावभाजी बनानी है|"

पावभाजी... मानो सब थम-सा गया था यह बोलकर मेमसाहब तो अंदर चली गईं, पर मेरी यादें!! वो भला कहाँ जा सकती थीं? वो तो एक सैलाब बन कर बाहर आने की प्रतीक्षा में थीं "तिवारी जी, आपने वो पुराना काम छोड़ ये चौकीदारी क्यों चालू कर दी?" "पुराना काम..." मैंने अपना डंडा नीचे रखा और कुर्सी पर बैठ गया "चलो आज ये कहानी हम भी सुन लेते हैं|" शर्मा जी ने तौलिए से पसीना पोंछते हुए कहा| "एक चक्कर बाद में ही लगा लेंगे"| मैं आपको शर्मा जी से परिचित करा देना चाहता हूँ, शर्मा जी मालिक के पड़ोस में रहते थे| इनका अधिकतर समय मालिक के यहाँ गप्पें मारने में ही निकलता था| किस्से कहानियों का इन्हें बेहद शौक था

"शर्मा जी यह कोई कहानी नहीं है, यह सच्चाई है| तुम तो जानते ही हो राकेश और श्याम के बारे में दिनू" मैंने दिनू की तरफ देखा| "तिवारी जी मैंने आपसे कितनी बार कहा है मैं सिर्फ आपको जानता हूँ, किसी राकेश या श्याम को नहीं" दिनू बोला| "अरे शर्मा जी कसे आहात तुम्ही?" जीप से लटकते हुए लोखंडे साहब ने पूछा| "जय हिन्द साहब" शर्मा जी ने तोंद अंदर कर छाती फुलाते हुए कहा| जीप से इस तरह लटकते हुए लोखंडे साहब को देखकर कुछ लोगों को शायद वानर सेना की याद आती होगी, पर उन्हें देखकर मुझे अपने पागलपन पर स्टेम्प लगाने वाले एक निर्दय व्यक्ति का आभास होता है|

"शर्मा जी आप भी कहाँ इस पागल के साथ अपना समय बर्बाद कर रहे हैं?" यह कह कर लोखण्डे साहब ने फिर अपनी बेदिली का परिचय दिया| "नहीं-नहीं लोखंडे साहब मैं तो भाग कर आ रहा था| सोचा इसकी कहानी का ही ग्लूकोज़ पी लूँ, सारी थकावट दूर हो जाएगी|" "अरे यह पागल क्या कहानी सुनाएगा चलिये अंदर मैं बताता हूँ" 'पागल' अब मेरे धैर्य ने जवाब दे दिया था| "मालिक अभी ज़रूरी काम कर रहे हैं" मैंने अकड़ से कहा|

"तो बात चार साल पुरानी है, यह मुंबई बॉम्ब ब्लास्ट से पहले की बात है" लोखंडे जी ने चाय की चुस्की लेते हुए किस्सा शुरू किया| "मेरी पोस्टिंग उन दिनों दादर में थी| थाने के ठीक सामने यह तिवारी पावभाजी का ठेला लगाता था" श्याम और राकेश के बारे में तो बोलो, मैंने मुट्ठी कसते हुए लोखंडे साहब को मन ही मन कोसा| "सच मुझे पता होता तो मै इसको चौकीदार नहीं बल्कि बावर्ची की हैसियत से

रखता|" "हम विषय से भटक रहे हैं|" शर्मा जी ने एक और समोसा उठाते हुए अपने भाव व्यक्त किए| "पर तिवारी की पावभाजी काबिले-तारीफ़ थी|" यह सुनते ही मेरी बाँछे खिल उठीं| ऐसा प्रतीत हुआ मानो बरसों की मेहनत का फ़ल आज मिल रहा हो| "पर राकेश और श्याम का क्या? क्या वो तिवारी के साथ नहीं रहते थे?" शर्मा जी विषय में मानो घुस ही जाना चाहते थे "नहीं जी ये सब तो उसकी गढ़ी कहानियाँ हैं|"

राकेश और श्याम की यादों ने मुझे दादर थाने के चार साल पुराने दृश्य में पहुँचा दिया था वाह! क्या दिन थे वो क्या श्याम होती थी वो| कोई अपने जीवन में कभी भी थाने के दर्शन नहीं करना चाहता होगा, परंतु मेरी भाजी की सुगंध सबको खींच लाती थी| वो दिनू का रोज़ सब्जी ले कर आना सब "दिनू थोड़ी सब्जी ज़्यादा देना, आज थोड़ा जल्दी ठेला लगाऊँगा|" "भईया एक पीलेट एक्सट्रा पाव देना|" ये सुनकर ऐसा लगता था मानो मेरे परिवार का ही कोई सदस्य मुझ से कुछ मांग रहा हो दादर थाने का मेरा ठेला और मेरे ग्राहक ही तो मेरा परिवार था, जहां था| "क्या बात है तिवारी सब लोग तेरे यहाँ ही खाते हैं हमारे पास तो एक भी गिराहक नहीं आता"- बार-बार राकेश की मुझसे यही शिकायत रहती थी, मानो वो दोनों पूरी दुनिया के लिए अदृश्य थे, सारी दुनिया से परे "बस भगवान का शुक्र है" यह कह कर ही मैं उनको दिलासा दिया करता था फिर मेरे मन में एक बात आई और मैंने उनसे एक दिन पूछ ही लिया- "अच्छा एक बात बताओ तुमसे तो कोई पावभाजी नहीं लेता तो तुम अपना घर कैसे चलाते हो?" "अरे यहाँ तो कोई नहीं लेता, पर दरभंगा में कई गिराहक हैं" यह सुनते ही मैं चकित रह गया "दरभंगा में? पर तुम तो रोज़ रात यहीं ठेला लगाते हो, तो फिर दरभंगा में कब...?" मैंने जानना चाहा| "अरे तिवारी तुम पर भरोसा करते हैं इसलिए बता रहे हैं, सुनो किसी से कहना मत| आज रात तुम्हें एक खुफ़िया रास्ता बताते हैं, जिससे हम देर रात निकल कर अगले दिन सुबह दरभंगा में ठेला लगाते हैं|" बस फिर क्या था? उस दिन सारे राज़ से पर्दा उठ गया|

"चलो भाई तिवारी रात के 2 बज रहे हैं, हमारे साथ चलो" राकेश ने समान समेटते हुए कहा| "अरे तिवारी अभी तक गए नहीं?" पीछे से आवाज़ आई| "बस हवलदार साहब जा ही रहा हूँ" मैंने उत्तर दिया और पूछा "क्या बात है आज लोखंडे साहब ने पावभाजी नहीं खाई| नाराज़ हैं क्या साहब?" "नहीं तिवारी लोखण्डे साहब तो आज आए ही नहीं" हवलदार ने स्पष्ट किया| "ठीक है साहब कल मिलता हूँ" कहते हुए अपना ठेला बंद किया| "चलो तिवारी उस खुफ़िया रास्ते पर जहाँ हर मोड़ पर एक आदमी खड़ा होगा जो हमें रास्ता दिखाएगा" श्याम की इस बात ने मन में जिज्ञासा के कई द्वार खोल दिए थे|

फिर क्या था मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ा| हर मोड़ पर एक इंसान मानो हमारा मार्गदर्शन कर रहा हो| हम चलते चलते एक चबूतरे पर पहुँचे जहाँ एक बच्ची खेला करती थी वहाँ एक गाड़ी थी, जिसमें बैठ कर हम लोग दरभंगा गए|

"अरे शर्मा जी कहानी की चरम सीमा तब पहुँची जब तिवारी दरभंगा में आ गया मैंने उससे पूछा कि उसने दादर में ठेला लगाना छोड़ क्यों दिया? तभी तिवारी के बेटे ने बताया कि ब्लास्ट वाले दिन जब तिवारी अपने घर लौट रहा था तो वो ब्लास्ट के प्रभाव से न बच सका और उसका हाथ ज़ख्मी हो गया था इतना ही नहीं अब सारा काम उसका लड़का ही देखता था| वो अपनी हँसती-खेलती बेटी की मृत्यु के वियोग में पागल सा हो गया उसके घरवाले अपने पिता की बिगड़ती हालत के चलते दरभंगा में ही रहने लगे थे|" यह सुनकर मैं अपनी सारी यादों को भूल पुनः वर्तमान में आ गया था| मेरे मन में एक ख्याल आया कि साहब क्यों झूठ बोलते हैं, मेरा कोई परिवार नहीं मेरा तो सिर्फ एक ही परिवार है, वो है मेरी दादर में बिताई हुई ज़िंदगी| फिर भी मैंने अपने क्रोध पर काबू रखा और साहब की बात सुनने लगा "मज़े की बात तो यह है कि तिवारी का कहना था कि वो गाड़ियों पर 2-3 घंटों में दरभंगा आ जाया करता था|" "तो आपने इस राज़ से पर्दा नहीं उठाया?" "जी बिलकुल तलपड़े साहब, मैं अगले ही दिन सुबह तिवारी के साथ दादर थाने गया वहाँ वो मुझे हर एक मोड़ पर ले गया पर वहाँ कोई नहीं था, एक परिंदा भी नहीं| जिसे वो गाड़ी कहता था, उसमें उसके परिवार के सदस्यों की यादें थी, गाड़ी कोई मामूली गाड़ी नहीं एम्ब्युलेन्स थी जिसमें उसे अस्पताल ले जाया गया था वो हँसती-खेलती बच्ची और कोई नहीं उसकी बेटी थी, पर यह सब उसको कौन समझा सकता था भला"|

मुझसे अब बरदाश्त न हुआ| मैं कैसे बताऊं आपको कि उस दिन पता नहीं सब कहा चले गए थे और शायद हमारी गाड़ी भी किसी ने चुरा ली होगी| मैंने थैला मेज पर रखा और अपने बचाव में कहा, "साहब मेरी बात सच है|" "देखो तिवारी अब तुम दादर में काम नहीं करते हो, उन यादों को दिमाग से निकाल दो| वो तुम्हारी दुनिया नहीं है दरभंगा में जाओ, तुम्हारी दुनिया, तुम्हारा बेटा और तुम्हारे पिता सब वहीं तो हैं| जाओ दरभंगा और अपने बेटे का हाथ बँटाओ| पागलों की तरह रात में थाने के चक्कर लगाना बन्द कर दो|"

"नहीं साहब यह नहीं हो सकता| मेरे गिराहक, वो हँसती हुई बच्ची ही मेरा परिवार हैं, मैं दादर में आना नहीं छोड़ सकता, कभी भी नहीं, और मुंबई तो बिलकुल नहीं" मेरी आँखें परेशानी से बंद होने लगी थीं पर मुझे याद है उसी समय लोखंडे साहब को फ़ोन आया था| "हाँ हवलदार बोलो....क्या? राकेश और श्याम ने थाने के बाहर ठेला लगा रखा है?" यह सुनते ही लगा मानो मेरा परिवार मुझे फिर से मिल गया हो वो पुराने दिन फिर से लौट आए हों|

रेलगाड़ी का सफर

.रोशनी छाबड़ा

जहाँ गप्पे लड़ाने का कारण कुछ अंजानों का मिल-जाना था।
समय काटने के लिए उधर अंताक्षरी तो बस एक बहाना था।
तुम कभी नही समझ पाओगे, वो भी क्या एक ज़माना था।
किसी का कहना "लो बेटा तुम भी खाओ" मुझे बड़ा रास आता।
शायद इसलिए मुझे रेलगाड़ी का सफर बहुत था भाता।

जहाँ कुछ सिक्को के बदले मिलता सुरीला गाना था।
उधर खिलौनो वालो का तो रोज़ का आना-जाना था।
आती छोटी भूख मिटाने, उसे खुद की बड़ी भूख को जो मिटाना था।
उसी बूढ़ी अम्मा के लाए बेर का स्वाद मुझे आज भी याद आता।
शायद इसलिए मुझे रेलगाड़ी का सफर बहुत था भाता।

जहाँ छोटे बच्चों की मासूमियत भरी बातों का गुदगुदाना था।
उधर कितनी माँओ का सिलसिला नन्हों को पेड़ गिनवाना था।
खिड़की के बाहर रेल को देख किसी बच्चे का हाथ हिलाना था।
उसकी मुस्कुराहट देख लगता मानो है उससे कोई नाता।
शायद इसलिए मुझे रेलगाड़ी का सफर बहुत था भाता।

आज उसी रेलगाड़ी के, उसी डिब्बे में, खामोशी छा गई.....।
यात्रियों के मोबाइल पर सोशल नेटवर्किंग साइट्स जो आ गई।
ताकता रहता हूँ मैं की कभी तो सर उठा के मुस्कुरा दे।
जो चुटकुला फ़ोन पर पढ़ हँस रहा है, ज़रा मुझे भी सुना दे।
अब अम्मा के बेर खाने मिले, ऐसी किस्मत है कहाँ??
आजकल तो पैक्ड-फूड आइटम्स की हुकूमत है यहाँ।
बच्चे अब बच्चे कहाँ? कान तरसते हैं सुनने को बाते शरारत भरी।
"डोंट एक्ट लाइक अ किड", "टॉक इन इंगलिश" जैसे वाक्यों ने शायद यह हालत कर दी।
हाल यह है कि पूरे सफर खिड़की पर नज़र बन गई है मजबूरी।
यह समय शीघ्र कटे, देखता रहता हूँ अपनी घड़ी हर घड़ी।
इस खामोशी से बहुत चिढ़ता हूँ मैं मन में कहीं।
चिड़चिड़ी तो हो गई है यह रेलगाड़ी भी।
शायद इसलिए करती है यह देर बड़ी।
अब रेलगाड़ी का सफर ज़रा भी भाता नहीं।

क्यूँ मैं निर्जीव हूँ?

- देवोप्रिया शुक्ला

मैं बैग हूँ, "एक स्कूल बैग"। मैं अब तक जिया के साथ उसके स्कूल जाता था, जिसका नाम कुछ St. से शुरू होता है। पर चूंकि मै पुराना हो गया हूँ, मेरी उम्र हो गई है, इसलिए आज जिया ने मुझको अपनी नौकरानी की बेटी को दे दिया, और मैं कल से उसके साथ उसके स्कूल जाऊँगा।

आज मेरा राधा के स्कूल में पहला दिन है। राधा का स्कूल जिया के स्कूल से काफी अलग है। यहाँ कक्षा की दीवारों पर सुंदर रंग नहीं हैं, ईंटें दीवार के झड़ते प्लास्टर के पीछे से झांक रही हैं, खिड़की के शीशे टूटे हुए हैं, जहां से आती हुई सूरज की रोशनी इस बगैर बत्ती के अंधेरे कमरे को रोशन कर रही है

कमरे में जगह-जगह मकडी के जाले हैं। और तो और इस कमरे में AC तो छोड़ो एक पंखा तक नहीं है। यहाँ तक कि कमरे की छत ने भी बड़ी मुश्किल से खुद को इन चार टूटी फूटी दीवारों पर टिका रखा है, उसे देखकर लगता है मानो वह ज़मीन से मिलने के लिए बेहद उत्सुक है और अभी गिर पड़ेगी। एक छोटा-सा, टूटा-फूटा ब्लैकबोर्ड भी है इस कमरे में, जिस पर पड़ी धूल यह बताती है कि वह बरसों से अपने ऊपर कुछ लिखे जाने का इंतज़ार कर रहा है।

यहाँ का माहौल भी बहुत अलग है, यहाँ बच्चों के खिलखिलाते चेहरे नहीं दिखते। दिखते हैं तो बस भूख और गरीबी के बोझ तले डूबे, सूखे और बेजान चेहरे। कुछ बच्चे तो स्कूल भी केवल मध्याह्न भोजन (mid-day meal) के लिए आते हैं। यहाँ बच्चों की आँखों में सपने नहीं हैं, हैं तो सिर्फ कष्ट, असहायता और कई सवाल जिनके जवाब शायद किसी के पास भी नहीं है। यहाँ कोई भी डॉक्टर या इंजीनियर बनने के सपने नहीं देखता, ये लोग तो सिर्फ एक उद्देश्यहीन और लक्ष्यहीन जीवन में "जीवित" रहना चाहते हैं और उसके लिए कोई भी काम करने को तैयार हैं।

क्लास की एक दीवार पर गांधी जी की एक तस्वीर लटक रही है और उसे देखकर मेरे ज़ेहन में सिर्फ एक ही सवाल आ रहा है कि क्या उन्होंने इसी स्वाधीन और आदर्श समाज की कल्पना की थी?

मैं आज बहुत हैरान हूँ यह देखकर कि दो हमउम्र लड़कियों के जीवन इतने अलग कैसे हो सकते हैं? समाज के दो वर्गों में इतना फासला क्यों है? क्या स्वयं को शिक्षित बताने वाले लोगों को ये फर्क नज़र नहीं आता, या फिर नज़र आते हुए भी वो निर्जीवों जैसा आचरण करते हैं?

काश! मैं इन नन्हें फरिश्तों के लिए कुछ कर पाता, काश! मुझ में जीवन होता। पर "क्यों मैं निर्जीव हूँ?"

गुमराह

आशीष आनंद

भीड़ में तन्हा मुसाफिर वो अकेला रह गया ।
उपवन का ठूंठ अकेला धू धू कर जल गया ।
बहार का वो सूखा पत्ता टूट कर बिखर गया।
ज़िंदगी की दौर में वो लाश बनकर रह गया।

कतार से अकेली बींटी जुदा कुछ यूँ हो गयी...
अपनी रहों से वो फिर गुमराह हो गयी ।
कश्मकश में उसे बस मात मिलती रह गयी...
उसकी किस्मत मोतियों सी बिखरकर रह गयी ।

चला था बूंद अकेला इंद्रधनुष बनाने को...
हर बार रंगों ने साथ उसका छोड़ दिया ।
चला था वो अकेला लक्ष्य की राह में...
और हर बार मंजिल ने रास्ता मोड़ दिया ।

काँटों की यारी

विक्रांत शर्मा

एक किरसे को कहानी समझ गया,
मैं उसे अपना दिल-जानी समझ गया ।
उसने तो दिखाया था अक्सर अपना रंग,
मैं ही नादान था जो जहर को मीठा पानी समझ गया।

दरिया को वो सहारा समझ गया,
वो आग की आँच में मुझे खुला रख गया ,
उसने समझा लकड़ी हूँ कि जल जाऊँगा,
मैं तो सोना निकला और चमक गया ।

बेवजह की दोस्ती से चुप्पी अच्छी है,
उन बंदिशों से खुली हवाएँ अच्छी हैं,
बहुत हो गयी फूलों के साथ गहमा-गहमी,
अब लगता है काँटों की यारी अच्छी है।

क्योंकि काँटों के जख्मों का तो पहले से पता होता है,
फूलों का जख्म तो अप्रत्याशित असहनीय होता है।
इसीलिए आजकल फूलों की बजाय काँटों का चलन होता है ।

एक पत्र की अनूठी यात्रा

आवेश

"*एनी*, 50 साल पहले हमनें पत्राचार किए थे| आज अपने कुछ पुराने दस्तावेजों को जब मैं स्थानान्तरित कर रहा था तो तुम्हारा छायाचित्र प्राप्त हुआ| अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ और अपने पुराने सुनहरे दिनों के उन समस्त परिचितों को याद करना चाहता हूँ और तुम भी उनमे से एक हो| आशा करता हूँ तुम्हारे यहाँ सब कुशल मंगल होगा|

भवदीय

सुशील"

काली स्याही से सिलवटदार छायाचित्र पोस्टकार्ड पर कनाडा के टोरंटो शहर से लिखा गया यह पत्र नई दिल्ली के पोस्ट ऑफिस के भूले-बिसरे पत्रों के ढेर में पड़ा हुआ था|

शायद 1963 में नवयुवक सुशील जर्मनी में एनी नामक सुन्दर नवयुवती से मिला था| पोस्टकार्ड के माध्यम से शायद उनमे पत्राचार भी हुआ| उन्हीं पत्रों में से एक पत्र की छायाप्रति इस पत्र के साथ संलग्न थी, जिसमें एनी छोटे गहरे रंग के केशों के साथ अपने अधरों पर एक हलकी सी मुस्कराहट लिए हुई थी| शेष पत्र में वह चिट्ठी थी जो उसने सुशील को जर्मन भाषा में लिखी हुई थी और सुशील के उस अपार्टमेंट का पता था जब वह जर्मनी में रहता था|

यह पत्र पिछले वर्ष 17 सितम्बर को जर्मनी भेजा गया था| जर्मनी की पोस्टल सेवा ने इस पते की काफ़ी खोज की परन्तु वे इस पते को ढूढनें में नाकाम रहे| वे न तो घर ही खोज कर पाए और न ही एनी का पता लगा पाए, जिसके पश्चात वह पत्र पुनः दिल्ली भेज दिया गया| इसके बाद अधिकारी तथा कर्मचारी प्रेषक सुशील की खोज में लग गए जो कि दिल्ली में रहता था, परन्तु पते के आभाव में वह सुशील को भी नहीं खोज पाए| इस प्रकार यह पत्र दो शहरों के मध्य, दो देशों के मध्य तथा दो पत्रव्यवहारियों के मध्य निलंबित रह गया| क्या एनी अभी भी जीवित होगी? क्या अभी भी वह वही रहती हैं जहाँ वह ।963 में रहा करती थी? अगर ऐसा हैं तो क्या उसे अभी भी सुशील की याद आती हैं? शायद सुशील यह कभी न जान पाए और शायद एनी भी यह कभी न जान पाए कि एक पत्र ने भारत से 4000 मीलों की यात्रा मात्र उसके याद में तय किया|

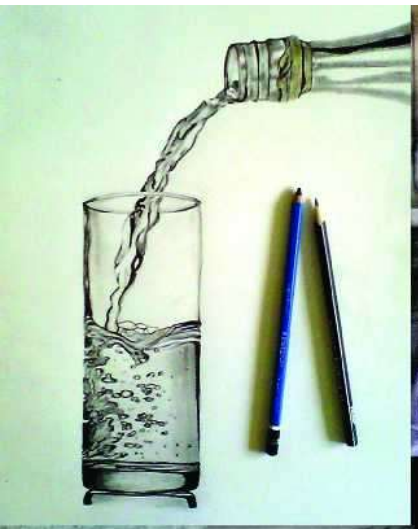

चेतन

गुज़ारिश

इस बेपरवाह वक्त से दिली गुजारिश हैं मेरी
कि लौटा दे वो बीते हुए कल,
जहाँ की इस आपाधापी में थम के रह गयी हैं
उसकी आड़ मे शौकियों कि हस्ती।

इस जहाँ कि इन तमाम बंदिशों मे
हर सूरत-ए-आम पर शिकन सी झलकती हैं,
बेवफाई से भरी इस दुनियाँ में
याद आ जाती हैं बचपन की वो सरपरस्ती।

कि एतबार-ए-उम्र अभी जिन्दा हैं मुझमे
सुद फरामोशी के जमाने और होंगे,
वो जो सोचते हो तुम कि बचपन ढ़ल गया
आज भी कतरा-कतरा यादें हैं मुझ पर बरसती।

हर बच्चे के चहरे पर खिली वो मासूम मुस्कराहट कहती हैं
कि रखो इकरार अभी जिंदगी के तराने पर,
वक्त के गहरे समंदर मे बह जाती हैं
हर एक आम-ओ-खास शख्सियत की कश्ती।

-आवेश सिंह

युग बदलेगा, हम बदलेंगे

ठाकुर राजवीर सिंह रामपुर के एक जाने माने शख्सियत हैं। पुरखों द्वारा प्रदत्त सम्पति तथा यश को आज भी वो बड़े ढंग से संभाले हुए हैं। आज भी इनका परिवार सदियों से चली आ रही संयुक्त परिवार की परिभाषा को जीवित रखे हुए हैं। परिवार में राजवीर सिंह का निर्णय ही अंतिम निर्णय होता था। परन्तु पिछले कुछ दिनों से परिवार में काफ़ी उथल-पुथल हो रहा था। राजवीर सिंह की बेटी दिव्या कई दिनों से शादी से इनकार कर रही थी, अब जब घर वालों ने दबाव डालना शुरू किया तो उसने अपना फैसला सुनते हुए कहा "आप सबको मेरे जीवनसाथी को लेकर परेशान होने की जरुरत नहीं हैं मैंने अपना जीवनसाथी खोज लिया हैं।" दिव्या तो अपना फैसला सुनाकर निश्चिन्त हो गई लेकिन घर वालों को तो जैसे साँप सूंघ गया। वर्षों पुरानी परंपरा और शान रुपी दीवार आज टूट रही थी। ठाकुर राजवीर ने कड़क आवाज में पूछा " लड़का क्या अपनी बिरादरी का हैं?" "नहीं" दिव्या ने तपाक से जवाब दिया और प्रतिप्रश्न किया कि "किसे क्या फर्क पड़ता हैं?"

दिव्या ठाकुर राजवीर सिंह की एकलौती लड़की हैं उसकी शिक्षा-दीक्षा प्रारंभ से ही बाहर हुई थी। इन दिनों वह दिल्ली के एक प्रतिष्ठित बैंक में कार्य करती हैं। राजवीर सिंह की पत्नी शकुंतला देवी ने तो जैसे घर ही अपने सर पर ले रखी थी। पिछले दो दिनों से वह कभी राजवीर सिंह पर तो कभी दिव्या पर सवालों के बौछार किए जा रही थी कैसा हैं? क्या करता हैं? किस परिवार से हैं? कितना कमाता हैं? इत्यादि। दिव्या ने बताया कि लड़का काफ़ी अच्छा हैं और अच्छी नौकरी भी करता हैं। घर वालों को दो टूक जवाब देते हुए बोली "यह मेरी जिंदगी हैं आप लोगों को इतना सोचने की जरुरत नहीं हैं। मैं अपना भला-बुरा सब कुछ जानती हूँ, मैं अब बड़ी हो चुकी हूँ।"

राजवीर सिंह के छोटे भाई यशवीर सिंह क्षेत्र के जाने

माने जन नेता हैं। अपनी बिरादरी में अच्छी पैठ होने के नाते उनका कद राजनीति में काफ़ी ऊँचा हैं। परन्तु दिव्या के इस फैसले ने तो मानों पूरे रिश्तेदारों के साथ-साथ यशवीर को काफ़ी विचलित कर रखा था। हमेशा बिरादरी को एकजुट रखने का दावा करने वाला आज अपने परिवार को ही एकजुट नहीं रख पा रहा था और दिव्या के निर्णय को स्वीकार करने के लिए यशवीर सिंह किसी भी प्रकार से तैयार नहीं थे। राजवीर सिंह से मुख़ातिब होते हुए यशवीर सिंह ने बोला "भाई साहब वैसे भी अभी क्या कम समस्याएँ हैं' जो इस लडकी ने एक नया बखेड़ा खड़ा कर रखा हैं। अगले ही महीने चुनाव होने वाले हैं। विरोधियों को बैठे बैठाएं मौका मिल जाएगा और अपनी बिरादरी का ही साथ नहीं मिल पाएगा। आगे से बिरादरी में मुँह भी दिखाने लायक नहीं बचेंगे।"

चुनाव की बात आते ही राजवीर सिंह ने बताया "मैंने तफ़्तीश करवाई हैं और लड़का सचिवालय में कार्यरत हैं तथा इस समय हमारे ही क्षेत्र का चुनाव आयुक्त हैं।" इतना सुनते ही यशवीर सिंह के मन में एक अनिर्वचनीय आनन्द का श्रोत प्रवाहित होने लगा। इस आनंदानुभूति ने उनकी जिह्वा की कटुता को भी माधुर्य में परिवर्तित कर दिया। कहने लगे "भाई साहब समाज में अगर परिवर्तन लाना हैं तो उसकी शुरूआत अपने घर से करनी चाहिए। वैसे भी जाति-प्रथा आज देश के लिए एक अभिशाप सा बन गया हैं। जब दिव्या बेटी को वो लड़का पसंद हैं तो फिर हमें रोक नहीं लगानी चाहिए। वैसी भी मैंने अपनी लाडली भतीजी के बचपन से ही इसके मन का ही सब कुछ करता था।"

स्वयंसिद्धा

– कृष्ण गोपाल दैया

स्वयंसिद्धा बनने की चाह में,
अहंकार के कठोर आवरण में,
कैद होकर रह जाता है आदमी,
इस जग और समाज से तो क्या,
अपने-अपनों से कट कर रह जाता है आदमी,
चाहकर भी किसी से जुड़ नहीं पाता,
अंदर ही अंदर घुट कर रह जाता है आदमी।

पुष्पितश बनकर खिलने में,
प्रेम स्नेह लेने देने में,
खुशियाँ अपार पाता है आदमी,
मुश्किलें आसान होती और,
राह-ए-रोशन गुलफ़ाम होती और,
पूरे होते हैं हर काम,
तब बिना किसी चाह के बदले,
स्वयंसिद्धा बन जाता है आदमी।

बीते हुए लम्हे का पैगाम

नमन गुप्ता

सुबह की पहली किरण एक आस जगाया करती थी।
ढलती हुई शाम तकदीर बयाँ कर जाती थी।।
ना जाने क्यों इल्म था की अपनी हस्ती हम खुद ही बनायेंगे।
शोहरत के इस सुनहरे आसमां पर सितारों की मानिंद छा जायेंगे।।

वक्त के तराने पर तमन्ना थी अपनी धुन गुनगुनाने की।
जिंदगी के हर एक पहलू को आने वाले कल की फलस्फ बनाने की।।
लाजिमी था कि इस जामने के हर एक दौर मे कई ठोकरे खायेंगे।
पर यह किसे पात था कि इसी जमाने पर अपनी मनमर्जियाँ चलाएँगे।।

प्रतिद्रोह

प्रणय दुबे

"सम्भू! सम्भू!" की आवाज़ मैदान के एक कोने से दूसरे कोने तक लहर की भांति प्रसारित हो रही थी। हज़ारों की संख्या में लोग आज सम्भव की जीत देखने की आशा से आए हुए थे। एयरगन की "धाँय" सुनते ही पूरे मैदान में एक पल के लिये सन्नाटा छा गया, और अगले ही पल एक जोड़ी विलायती जूतों की "टप टप" ने क्षणिक नीरवता को तोड़ दिया। "सम्भू! सम्भू!" की लहर एक बार फिर मैदान में दौड़ पड़ी, और हर दर्शक की निगाहें रेस ट्रैक पर कदमों की गति के साथ आगे बढ़ने लगीं।

सम्भव के नंगे कदम जिस गति के साथ रेस ट्रैक पर आगे बढ़ रहे थे, उसी गति से उस शाम का दृश्य उसकी नज़रों के सामने घूम रहा था। आंगन में अमली और रामकुमार, भोले ठाकुर के कदमों पर बार-बार अपना माथा पटक रहे थे। अहंकार में खड़े छोटे ठाकुर ने सुलेखा को कलाई से पकड़ रखा था।

सुलेखा और सम्भव बचपन में साथ पढ़े थे। अब गांव के हालातों ने सम्भव को पाठशाला से उठा कर खेतों में और सुलेखा को चूल्हे के सामने ला पटका था। आज छोटे ठाकुर की नज़र सुलेखा पर पड़ी थी, जिसके परिणाम स्वरूप अमली- रामकुमार अपनी बेटी की सलामती की भीख मांग रहे थे। उस समय सम्भव गांव के दबंगों के आगे कुछ कह पाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। घर आकर बिना कुछ खाए पिये बिस्तर पर लेट गया।

घड़ी के कांटे थके-थके से रात की खामोशी में आगे बढ़ रहे थे। घर के बगल की सूनी सड़क कुत्तों के भौंकने की आवाज़ से कभी-कभी गूंज उठती थी। छत पर बरसों से टंगे सीलिंग फैन की ओर नज़रें किये उस रात सम्भव नींद का इंतज़ार कर रहा था, परंतु नींद की बयार चिंता के बीराने में नहीं बहा करती। आत्मग्लानि से भरे सम्भव ने सुलेखा को छुड़ाने का मन ही मन निश्चय कर लिया था।

छोटे ठाकुर सम्भव के हम उम्र थे। कलकत्ता के किसी नामी गिरामी कॉलेज में बी.ए. की पढ़ाई कर रहे थे। छोटे ठाकुर के छोटे से दिमाग पर आजकल दौड़ने का भूत चढ़ा हुआ था। रोज़ सुबह गांव की लड़कियों को छेड़ते हुए एक दो मील दौड़ कर खुद को उसैन बोल्ट समझा करते थे। सम्भव इस बात से परिचित था।

अगली सुबह छोटे ठाकुर जब दौड़ने के लिये निकले तो रास्ते में उन्हें विमला और रानी कुएँ से पानी भरती नज़र आयीं। पास ही सम्भव कसरत कर रहा था।

अपनी आदत से मजबूर छोटे ठाकुर ने विमला और रानी पर अश्लील टिप्पणियाँ करना शुरु कर दिया। यह सुनकर विमला ने हँस कर रानी से कहा "अपने सम्भू को देखो, दौड़ के मामले में उसके आगे कोई नहीं। छोटे ठाकुर को तो दौड़ में दो बार हरा दे अपना सम्भू"। इस पर छोटे ठाकुर का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया। छोटे ठाकुर को दौड़ने के साथ साथ सिनेमा का भी शौक था। फिल्मी अंदाज़ में अपने गुस्से को उगलते हुए बोले "ये सम्भू मेरे आगे क्या लगेगा, इसके जैसे कई देखे हैं मैंने।" सम्भव को इसी पल का इंतज़ार था, छोटे ठाकुर की ओर बढ़ कर बोला "छोटे ठाकुर, इस बात का निर्णय एक प्रतियोगिता ही कर सकती है, अगर मंज़ूर हो तो कहिए! अगर मैं जीता तो सुलेखा को रिहा कर दीजियेगा, और अगर आप जीते तो सारी उम्र आपकी गुलामी करुंगा"। छोटे ठाकुर अपनी अकड़ के होते ना कैसे कह देते, फौरन राज़ी हो गए।

छोटे ठाकुर में आत्मविश्वास की कमी नहीं थी, परंतु उनके पिता भोले ठाकुर अपने बेटे की सच्चाई से भली भांति परिचित थे। उन्होंने अपने चमचों को फौरन सम्भव से जुड़ी सारी जानकारी लाने का आदेश दिया। चमचों से पता चला कि सम्भव का एक बहुत ही करीबी दोस्त है बनवारी। बनवारी के माता पिता का देहांत 2 बरस पहले हो चुका था, और अब वह अपनी बहन के साथ बाज़ार के पास ही रहा करता था। भोले ठाकुर के निर्मम चेहरे पर कुटिल मुस्कान की लकीर खिंच गई।

भोले ठाकुर के कठोर हाथ बनवारी की कॉलर पर थे। बनवारी की बहन अब सुलेखा की तरह भोले ठाकुर के चंगुल में थी। बनवारी के हाथों में काले रंग की शीशी थमाते हुए भोले ठाकुर ने रेस से पहले सम्भव के पानी में उसे मिलाने का आदेश दिया। आदेश का पालन ना होने पर बनवारी की बहन अपनी जान से हाथ धो बैठती।

भले ही सम्भव के पास जूते ना थे, लेकिन उसके नंगे पैर ही छोटे ठाकुर को हराने के लिये काफी थे। सम्भव छोटे ठाकुर से काफी आगे निकल चुका था और भोले ठाकुर की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। बेहोश होना तो क्या, सम्भव के चेहरे पर शिकन की एक लकीर नहीं थी।

रेस खत्म हुई और सम्भव ने आसानी से छोटे ठाकुर को हरा दिया। यह देख भोले ठाकुर गुस्से में उठ खड़े हुए। लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कह पाते, "धाँय" की आवाज़ ने एक बार फिर मैदान में क्षण भर का सन्नाटा फैला दिया। इस बार आवाज़ किसी एयरगन से नहीं आई थी। भोले ठाकुर से कुछ ही दूर खड़े बनवारी के हाथों में देसी कट्टा अभी-अभी चली गोली का धुआँ उगल रहा था। गोली अब भोले ठाकुर के बेरहम दिल के अंदर थी, और बनवारी के हाथों में किसी न्याय की तराजू की तरह पड़े हुए कट्टे का रुख अब छोटे ठाकुर की ओर हो चुका था।

घर जा रहा हूँ

सत्यम पराशर

एक और सेमेस्टर हो चुका है। दुनिया की सारी फिल्म, टी. वी. सीरीज़ और ट्यूटोरियल आपके लैपटाप में जगह पा चुकी होंगी। इसके लिए डी. सी. वाले भाई लोगों को धन्यवाद तो करना ही चाहिए। लाइब्रेरी की विंटर बुक स्कीम के तहत बहुतों ने चार-चार किताबों को भी अपने बैग में जगह दी होगी। यह तो मानना होगा कि ये 20-25 दिन बड़े ही सुकून के होते हैं। कहाँ वह अस्त व्यस्त ट्यूटोरियल टेस्ट से भरा सेमेस्टर और कहाँ घर पर आप और आपका बहुत सारा खाली समय। टी.वी. सिरीज़ और किताबों से जब मन ऊब जाए तो ज़रा उनकी तरफ भी देख लीजिएगा जो सेमेस्टर भर आपका इंतज़ार करते रहते हैं। हो सकता है कि ममता में सनी एक रोटी जबर्दस्ती खिलाई जाएगी आपको, गुस्सा मत कीजिएगा, खा लीजिएगा। एक रोटी ही तो है, पूरे सेमेस्टर तो आप कसरत ही करते रहते हैं।

तेल की बहुत सारी मालिशों से आपको पाल-पोस कर बड़ा किया गया है, यह जान कर कभी उन पैरों को दबा दीजिएगा- हो सकता है कि इसके लिए आपको अपनी किताब के एक दो पृष्ठ पढ़ने के लिए 10 मिनट का इंतज़ार करना पड़ जाए। आप इंजीनियर बनने की दौड़ में हैं, कॅम्प्री और सी.डी.सी. आपके बोल चाल की भाषा है और इन्हें समझना आपके लिए आसान होगा, उनके लिए फ़ाइनल परीक्षा और कोर्स ही उपयुक्त होगा। जब वे कॉम्प्री सुन कर न समझ पाएँ, तो झुँझलाने की बजाय समझाइएगा।

इस सब के बीच सर्दियों की दोपहर की गुलाबी धूप में छत पर जा कर ज़िंदगी जीना मत भूलिएगा। कुछ पुराने दोस्त भी आए होंगे, उन्हें समय देना भी उचित होगा। किसी रविवार अपने अंदर उसी आवारे बच्चे को ढूँढिएगा जो सुबह 7 बजे क्रिकेट खेलने जाता था और शाम 4-5 बजे तक पड़ोस के मुहल्ले के लड़कों के साथ 10-10 रुपये के मैच पर मैच लेता ही जाता था। घर बस दोपहर के खाने के लिए ही आता था, वो भी तब जब माता जी डंडा ले कर ग्राउंड के बाहर से आवाज़ लगाती थीं।

दिन तेज़ी से ही निकल जाते हैं, पिलानी वापसी के समय आप चाहे Akshay का झाँसा दें या Connaught का, आपके ऊपर पूरा का पूरा घर लाद देने की कोशिश अवश्य ही की जाएगी। अपने बचपन के जिद्दीपन को याद कर के मना भी प्यार से ही कीजिएगा। इस प्यार की कीमत तो कहीं न कहीं हम सब ही जानते हैं, मगर जानना मात्र ही काफी नहीं, इसका इज़हार भी जरूरी है। यूथ कॉन्फ्रेंस 2014 के दौरान एक गेस्ट स्पीकर ने वहाँ बैठे सभी लोगों से एक मैसेज उनके घर पर भिजवाया था, मैसेज में लिखना था "पापा-मम्मी आइ लव यू"।

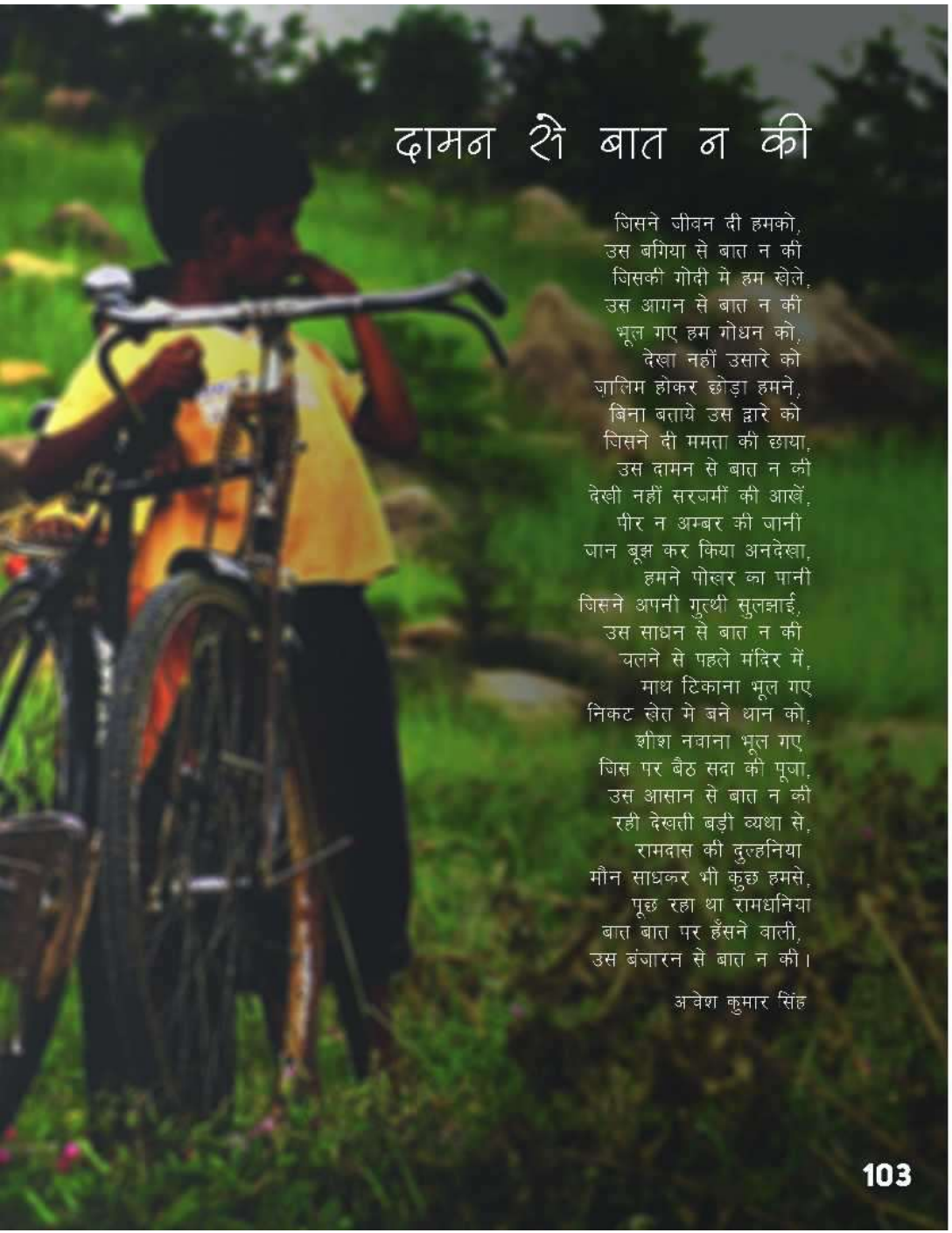

दामन से बात न की

जिसने जीवन दी हमको,
उस बगिया से बात न की
जिसकी गोदी मे हम खेले,
उस आगन से बात न की
भूल गए हम गोधन को,
देखा नहीं उसारे को
जालिम होकर छोड़ा हमने,
बिना बताये उस द्वारे को
जिसने दी ममता की छाया,
उस दामन से बात न की
देखी नहीं सरजमीं की आखें,
पीर न अम्बर की जानी
जान बूझ कर किया अनदेखा,
हमने पोखर का पानी
जिसने अपनी गुत्थी सुलझाई,
उस साधन से बात न की
चलने से पहले मंदिर में,
माथ टिकाना भूल गए
निकट खेत मे बने थान को,
शीश नवाना भूल गए
जिस पर बैठ सदा की पूजा,
उस आसान से बात न की
रही देखती बड़ी व्यथा से,
रामदास की दुल्हनिया
मौन साधकर भी कुछ हमसे,
पूछ रहा था रामधनिया
बात बात पर हँसने वाली,
उस बंजारन से बात न की।

अवेश कुमार सिंह

आभारोक्ति, वाणी 2015

इस पत्रिका में समाए भावों के अनगिनत रंगों को एक साथ इस छोटी-सी पोटली में किसी अकेले के अनुभव के रंगों से नहीं रंगा जा सकता है। इसमें कई लोगों की भूमिका रही है।

कुलपति प्रो. बिजेंद्र नाथ जैन, निदेशक प्रो. जी. रघुरामा, पूर्व मुख्य संरक्षक स्व. चम्पक बरन दास, मुख्य संरक्षक प्रो. साईं जगन मोहन, डॉ. अमित कुमार वर्मा सहित उन तमाम शिक्षकों की सहायता तथा सराहनीय मार्गदर्शन हेतु हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

आशुतोष, प्रणीत एवं छात्र संघ के समस्त सदस्यों को इस पत्रिका के संपादन में तकनीकी विषमताओं को दूर करने के प्रयासों की सराहना करता हूँ।

परिसर में मेरे अपने परिवार, हिंदी प्रेस परिवार के समस्त वरिष्ठ जनों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने मेरी काबिलीयत पर भरोसा करते हुए इस पत्रिका के संपादन की अहम जिम्मेदारी सौंपी।

'में' से लेकर 'हैं' तक की गलती सुधारने का कार्य हो अथवा पाँच पृष्ठ के लेख को तीन पेज तक ही सीमित करने का कार्य हो अथवा किसी भी घड़ी एक नए लेख के साथ सदैव इस पत्रिका को एक नई ऊँचाई तक पहुँचाने में अपनी भूमिका निभाने वाले यशादित्य व्यास, रजत पालीवाल, यशवर्धन चमोली, प्रणय दुबे, आप लोगों के बिना इस पत्रिका की कल्पना करना भी नामुमकिन है।

सौम्या वेंकटेश तथा 'कैक्टस फ्लावर' की सम्पूर्ण सम्पादकीय टीम, इस पत्रिका के संपादन में आप लोगों ने जिस प्रकार हर एक कदम पर सहयोग प्रदान किया, वाणी की सम्पादकीय टीम आपका हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

प्रांजल दीप, अभिनव भारद्वाज एवं उत्कर्ष गुप्ता इस तिकड़ी द्वारा संपादन के अंतिम समय में किए गए सहयोग से ही यह पत्रिका अपने वर्तमान स्वरूप में आप के हाथों में शोभायमान है। इस पत्रिका में निर्जीव शब्दों से रचित लेखों को अपनी रचनात्मकता से जीवंत करने में सिद्धार्थ की लगन अनिर्वचनीय है। आपके प्रयासों ने निश्चित रूप से इस पत्रिका की रचनात्मकता को एक नए स्तर पर पहुँचाया है।चेतन राज पाण्डेय ने जहाँ अपनी बेजोड़ कलाकृतियों से पत्रिका की शोभा बढ़ाई, वहीं समीश बेदी ने अपने छायाचित्रों से पत्रिका में नए रंगों को घोला, तो वत्सल गुप्ता ने भी अपनी रचनात्मकता का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। आप सभी के प्रयासों के लिए हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

इलाश्री, आकृति, अंकिता, प्रवीण, सुयश आप सभी के वाणी के संपादन में किए गए बेहतरीन प्रयासों के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। प्रियंक, अंचल, विवेक, गोविन्द तथा हिंदी प्रेस परिवार के समस्त कनिष्ठ गण, आप लोगों ने निश्चित रूप से काबिल-ए-तारीफ़ सहयोग प्रदान किया है।

समस्त विप्रवासियों ('बिट्सियन' का हिंदी रूपांतरण) का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगा क्योंकि इस पत्रिका के विषय भी आप ही हैं, और परिणाम भी आप पर ही निर्भर करता है। इस पत्रिका को पढ़ने वाले समस्त विप्रवासियों को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ क्योंकि इस पत्रिका का अस्तित्व ही आप के इन्हीं प्रयासों में निहित है।

अंत में शुक्रिया अदा करना चाहूँगा अपने अभिभावकों, परिजनों एवं ईश्वर का क्योंकि यह पत्रिका उनके संस्कार, शिक्षा एवं आशीर्वाद की मात्र एक झलक है। इस पत्रिका के स्वरूप को देखने के पश्चात जब मेरे परिजनों को यह ज्ञात होगा कि हम संपादक हैं तो कि उन्हें निश्चित रूप से गर्व की अनुभूति होगी।